प्रकाशक—

अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

श्रीमान् भुरालालजी पालड़ेचा धनोप निवासी की ओर से स्वाध्याय करने वालों को सादर भेंट

तृतीयावृत्ति
२०००

वीर संवत् २४९९
विक्रम संवत् २०३०
अगस्त सन् १९७३

मुद्रक– श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना (म. प्र.)

निवेदन

दशवैकालिक सूत्र, आचाराग के समान चारित्र-धर्म के निर्दोष विधि विधानों का भण्डार है। 'गागर में सागर' है। निर्ग्रन्थ-प्रवचन के आचार-धर्म—चारित्र-धर्म को जानने—समझने का सरल-सुबोध साधन है। चतुर्विध सघ मे इसके पठन-मनन और अभ्यास की विशेष प्रवृत्ति है—आचारांग से भी अधिक।

श्री दशवैकालिक सूत्र की यह तीसरी आवृत्ति प्रस्तु है। इस बार यह अन्वयार्थ सहित है। इससे अभ्यास करने वालों को विशेष सुविधा होगी।

इस आवृत्ति में द्रव्य की सहायता स्वर्गीय सुश्राविका श्रीमती पतासबाई मातेश्वरी श्रीमान् सेठ मिलापचन्दजी सा. बोहरा मड्या (मैसूर) मारवाड मे पिसागन निवासी है। आप द्वारा प्रदत्त दान मे से श्रीमान् मिलापचन्दजी साहब ने द्रव्य-सहायता देकर पुस्तक सर्व-सुलभ बना दी।

सघ का उद्देश्य प्रारम्भ से ही स्वल्प मूल्य मे धर्म-साहित्य का प्रकाशन कर प्रचार करने का रहा है। इसकी सफलता उदार हृदय दानवीर महानुभावो पर अवलम्बित है।

सघ-साहित्य समाज मे बहुत उपादेय रहा है। कई पुस्तकें

अप्राप्य हैं, जिनकी माँग आती ही रहती है। हम चाहते हैं कि विपुल परिमाण मे साहित्य का प्रकाशन हो कर प्रचार हो, किन्तु योग्य सहायक एव प्रेस कर्मचारियो के अभाव मे थोडा ही काम होता है। चाहते हुए भी हम विशेष नही कर सकते। यदि सभी प्रकार की अनुकूलता हो, तो सघ वहुत अधिक कार्य कर सकता है।

मेरे सामने राजकीय झझटे भी कई खडी है—व्यर्थ की। प्रेस के निमित्त से 'विक्रय कर,' 'वृत्ति कर' आदि विवाद खडे होते हैं और उनमे उलझना पडता है। शारीरिक स्थिति भी अनुकूल नही रहती। ऐसी स्थिति मे जितना वन जाय, उसीसे सतोष करना होता है।

हमारी कठिनाइयो पर विचार कर इस जैसी-तैसी सेवा को स्वीकार कर अनुग्रहीत करने एव यथाशक्य सहयोग प्रदान करने की उदार महानुभावो से विनती है।

सैलाना
श्रावण पूर्णिमा
१४-८-७३

—रतनलाल डोशी

"णमोत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स"

पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरि विरचित

दशवैकालिक सूत्र
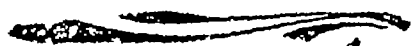
'दुमपुप्फिया' प्रथम अध्ययन

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अन्वयार्थ—अहिंसा-प्राणियो की हिंसा का त्याग करना तथा जीवो की रक्षा करना, **संजमो**-सयम और **तवो**-तपरूप **धम्मो**-श्रुत-चारित्र रूप धर्म, **मंगलं**-कल्याणकारी और **उक्कि-ट्ठं**-श्रेष्ठ है। **जस्स**-जिस पुरुष का, **मणो**-मन, **सया**-सदा, **धम्मे**-धर्म मे लगा रहता है, **तं**-उसको, **देवा**-देव, **वि**-भी, **नमं-संति**-नमस्कार करते हैं ॥१॥

भावार्थ—श्रुत-चारित्र रूप धर्म मे लीन प्राणी देवों का भी पूज्य बन जाता है।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥

अन्वयार्थ – जहा–जिस प्रकार, भमरो–भ्रमर दुमस्स–वृक्ष के, पुप्फेसु–फूलों में से, रस–रस को, आवियइ–पीता है, य–और पुप्फ–फूल को, ण किलामेइ–पीड़ित नहीं करता है, य–और सो–वह भ्रमर अप्पय–अपनी आत्मा को, पीणेइ–सन्तुष्ट कर लेता है ॥२॥

भावार्थ—जैसे भ्रमर अनेक वृक्षों के फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस चूसता है। इस प्रकार वह फूलों को कष्ट नहीं पहुँचाता हुआ अपनी आत्मा को सतुष्ट कर लेता है।

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए सति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे (णा) रया ॥३॥

अन्वयार्थ—एमेए–इसी प्रकार से, लोए–लोक में, जे–जो मुत्ता–द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त, समणा–श्रमण-तपस्वी साहुणो–साधु, सति–हैं, वे पुप्फेसु–फूलों में, विहंगमा–पक्षियों के, व–समान दाणभत्तेसणे (णा)–दाता द्वारा दिये हुए आहारादि की गवेषणा में, रया–रत रहते हैं ॥३॥

भावार्थ—साधु, गृहस्थियों को असुविधा न पहुँचाते हुए अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने में ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों से रस रहते हैं।

गुरु महाराज के प्रति शिष्य प्रतिज्ञा करता है—

वयं च वित्ति लब्भामो, ण य कोई उवहम्मइ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥

अन्वयार्थ—**जहा**–जिस प्रकार, **पुप्फेसु**–फूलो मे, **भमरा**–भ्रमर, **रीयते**–अपना निर्वाह करते है, **च**–उसी प्रकार, **वयं**–हम साधु, **अहागडेसु**–गृहस्थो द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहारादि की, **वित्ति**–भिक्षा **लब्भामो**–ग्रहण करेगे **य**–जिससे **कोइ**–किसी जीव को, **ण उवहम्मइ**–कष्ट न हो ॥४॥

भावार्थ—भ्रमर की भांति साधु लोग गृहस्थो द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहार मे से थोडा-थोड़ा ले कर अपनी सयम-यात्रा का निर्वाह करते है।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया।
णाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो। त्ति बेमि।

अन्वयार्थ—**जे**–जो **बुद्धा**–तत्त्व के जानने वाले हैं और **महुगारसमा**–भ्रमर के समान, **अणिस्सिया**–कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित **भवति**–हैं और **णाणापिंडरया**–अनेक घरो से थोड़ा-थोडा आहारादि लेने मे सन्तुष्ट हैं तथा, **दता**–इन्द्रियो को दमन करने वाले है। **तेण**–इसीसे वे, **साहुणो**–साधु, **वुच्चति**–कहलाते हैं ॥५॥ **त्ति बेमि**–श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते है—"हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।"

भावार्थ—जो तत्त्व को जानने वाले हैं, भ्रमर के समान कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित है, अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार ले कर अपनी उदरपूर्ति करते हैं और जो इन्द्रियो का दमन करते हैं, वे साधु कहलाते है।

'सामण्णपुव्वयं' दूसरा अध्ययन

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीअंतो, संकप्पस्स वसं गओ ॥१॥

अन्वयार्थ—जो-जो कामे-काम-भोगों को, न-नहीं निवा-रए-त्यागता है, वह संकप्पस्स-इच्छाओं के, वसं गओ-वश में हो कर, पए पए-पद-पद पर, विसीअंतो-खेदित हो कर, सामण्णं-श्रमण धर्म का, कहं नु-किस प्रकार, कुज्जा-पालन कर सकता है ॥१॥

भावार्थ—जो इन्द्रियों के विषयों का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाएँ हमेशा बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश मे करना चाहिये।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥२॥

अन्वयार्थ—जे-जो पुरुष, अच्छंदा-पराधीन होने के कारण वत्थ-वस्त्र, गंध-गन्ध, अलंकारं-आभूषण, इत्थीओ-स्त्रियों को और सयणाणि-शय्या को, न-नहीं, भुंजंति-भोगता है, से-वह

चाइत्ति–त्यागी, **ण**–नही, **वुच्चइ**–कहा जाता है ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन हो कर विषयो का सेवन नही कर सकता, वह त्यागी नही कहलाता, किंतु अपनी इच्छा से विषयो का त्याग करने वाला ही वास्तव मे सच्चा त्यागी कहलाता है।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थ—**जे**–जो पुरुष, **लद्धे**–प्राप्त हुए, **वि**–भी, **कंते**–मनोहर, **पिए**–प्रिय, **भोए**–भोगने योग्य, **य**–और, **साहीणे**–स्वाधीन, **भोए**–भोगो को, **पिट्ठिकुव्वइ**–उदासीनतापूर्वक, **चयई**–त्याग देता है, **से**–वह, **हु**–निश्चय से, **चाइत्ति**–त्यागी, **वुच्चइ**–कहलाता है।

भावार्थ—भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगने की स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगो को नही भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है।

समाइ पेहाइ परिव्वयंतो,
सिया मणो निस्सरइ बहिद्धा।
ण सा महं नोवि अहं पि तीसे,
इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं ॥४॥

अन्वयार्थ—**समाइपेहाइ**–समभाव पूर्वक, **परिव्वयंतो**–संयम मार्ग मे विचरण करते हुए साधु का, **मणो**–मन, **सिया**–कभी, **बहिद्धा**–संयम से बाहर, **निस्सरइ**–निकल जाय, तो **सा**–वह स्त्री,

मह–मेरी; ण–नही है और, अह–मैं, पि–भी, तीसे–उसका, नो वि–नही हूँ, इच्चेव–इस प्रकार विचार कर, ताओ–उस स्त्री पर से, राग-राग भाव को, विणइज्ज–दूर करे ॥४॥

आयावयाही चय सोगमल्लं ।
कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ॥
छिंदाहि दोसं विणइज्ज रागं ।
एवं सुही होहिसि संपराए ॥५॥

अन्वयार्थ—आयावयाहि–आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो, सोगमल्लं–सुकुमारता को, चय–त्याग दो, कामे–काम-भोगो को, कमाही–दूर करो, खु–निश्चय ही, दुक्ख–दु ख, कमियं–दूर होगा, दोस–द्वेष को, छिंदाहि–नष्ट करो, राग–राग को, विणइज्ज–दूर करो, एव–ऐसा करने से, सपराए–ससार मे, सुही–सुखी, होहिसि–होओगे ॥५॥

भावार्थ—पूर्वोक्त गाथा मे सूत्रकर्त्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरग उपाय बतलाया है। अब मनोनिग्रह का वाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि सयम से वाहर जाते हुए मन को वश मे करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग कर के ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग-द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
णिच्छंति वंतयं भुत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

अन्वयार्थ—**अगधणे**-अगन्धन नामक, **कुले**-कुल मे, **जाया**-उत्पन्न हुए सर्प, **जलिय**-जलती हुई, **धूमकेउ**-धूंआ निकलती हुई, **दुरासय**-कठिनाई से सहने योग्य, **जोइं**-अग्नि मे, **पक्खदे**-गिर जाते है, किन्तु **वतयं**-वमन किये हुए विष को, **भुत्तुं**-भोगने की, **न इच्छंति**-इच्छा नही करते ।।६।।

भावार्थ—सती राजमती, रथनेमि को कहती है कि अगंधन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प, अग्नि मे जल कर मर जाना तो पसन्द करते है, किंतु उगले हुए विष को पुन पीना नही चाहते ।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।७।।

अन्वयार्थ—**अजसोकामी**-हे अपयश के इच्छुक ! **ते**-तुझे, **धिरत्थु**-धिक्कार हो, **जो**-जो, **त**-तू, **जीवियकारणा**-असयम रूप जीवन के लिए, **वत**-वमन किये हुए को, **आवेउ**-पीना, **इच्छसि**-चाहता है । इसकी अपेक्षा तो, **ते**-तेरे लिए, **मरण**-मर जाना **सेय**-श्रेष्ठ, **भवे**- है ।।७।।

भावार्थ—सती राजमती चंचल चित्त बने हुए रथनेमि को संयम मे स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि संयम धारण कर के असयम मे आना निन्दनीय है । ऐसे असयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो सयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है ।

अहं च भोगरायस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ।।८।।

अन्वयार्थ—अह च-मैं राजमती, भोगरायस्स-भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ, च-और, त-तू, अधगवण्हिणो-अन्धकवृष्णि—समुद्रविजय का पुत्र, असि-है, गधणा कुले-गन्धन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प के समान मा होमो-मत हो, किन्तु निहुओ-मन को स्थिर रख कर, सजम-सयम का, चर-पालन कर ।।८।।

भावार्थ—राजमती, रथनेमि से कहती है कि अपन दोनो उच्च कुल मे उत्पन्न हुए हैं। अत उगले हुए विष को वापिस पी जाने वाले गन्धन कुल के सांप के समान न होना चाहिये।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारीओ ।
वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥९॥

अन्वयार्थ—तं-हे मुनि ! तुम, जा जा-जिन-जिन, नारीओ-स्त्रियो को, दिच्छसि-देखोगे, जइ-यदि उन-उन पर, भाव-बुरे भाव, काहिसि-करोगे तो, वायाविद्ध-विद्धो-वायु से प्रेरित, हडो व्व-हड नामक वनस्पति की भांति, अट्ठिअप्पा-अस्थिर आत्मा वाले, भविस्ससि-हो जाओगे ।।९।।

भावार्थ—राजमती, रथनेमि से कहती है कि हे मुनि ! जिस किसी भी स्त्री को देख कर यदि तुम इस प्रकार काम मोहित हो जाओगे, तो जैसे समुद्र के किनारे खडा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक ही झोके से समुद्र मे गिर पडता है, वैसे ही तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायगी।

तीसे सो वयण सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।
अकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥१०॥

अन्वयार्थ—**सो**-वह रथनेमि, **तीसे**-उस, **सजयाइ**-सयमवती-साध्वी के, **सुभासियं**-सुभाषित, **वयणं**-वचन को, **सोच्चा**-सुन कर, **धम्मे**-धर्म मे, **संपडिवाइओ**-स्थिर हो गया, **जहा**-जैसे, **अकुंसेण**-अकुश से, **नागो**-हाथी वश मे हो जाता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचनो को सुन कर रथनेमि धर्म-मार्ग मे स्थिर हो गये, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे आ जाता है।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो । त्ति बेमि ।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

अन्वयार्थ—**संबुद्धा**-तत्त्वज्ञ, **पडिया**-पाप से डरने वाले पण्डित, **पवियक्खणा**-विचक्षण पुरुष, **एवं**-ऐसा ही, **करंति**-करते हैं अर्थात् **भोगेसु**-भोगो से, **विणियट्टंति**-निवृत्त हो जाते हैं, **जहा**-जैसे, **से**-वह, **पुरिसुत्तमो**-पुरुषो मे उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया ॥११॥ **त्ति बेमि**-हे जम्बू ! जैसा मैने भगवान् से सुना है, वैसा ही कहता हूँ।

भावार्थ—जो विवेकी होते हैं, वे विषय-भोगो के दोषों को जान कर उनका परित्याग कर देते है, जैसे रथनेमि ने परित्याग कर दिया।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

'खुड्डियायार' तीसरा अध्ययन

जो निर्ग्रंथ महर्षियो को आचरण करने योग्य नहीं हैं, ऐसे ५२ अनाचारो का वर्णन इस अध्ययन मे किया गया है।

संजमे सुट्ठिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गथाण महेसिणं ॥१॥

अन्वयार्थ—सजमे–सयम मे, सुट्ठिअप्पाणं–भली-भाँति स्थिर आत्मा वाले, विप्पमुक्काण–सासारिक बन्धनो से रहित, ताइणं–छ काय जीवो के रक्षक, तेसिं–उन, निग्गंथाण–परिग्रह रहित, महेसिण–महर्षियो के, एयं–ये–आगे कहे जाने वाले, अणाइण्णं–अनाचार हैं।

उद्देसियं कीयगडं, नियागमभिहडाणि य।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य वीयणे ॥२॥

अन्वयार्थ—१ उद्देसियं*–औद्देशिक, २ कीयगडं–साधु के लिए खरीदा हुआ, ३ नियाग–किसी का आमत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, ४ अभिहडाणि–साधु के लिये

---

* किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले, तो आधाकर्म और यदि दूसरा साधु ले, तो औद्देशिक कहलाता है।

सामने लाया हुआ, य-और, ५ राइभत्ते-रात्रि-भोजन, य-और ६ सिणाणे-स्नान, ७ गंध-सुगधित पदार्थों का सेवन, ८ मल्ले-फूलादि की माला, य-और, ९ वीयणे-पखादि से हवा लेना ।२।

संनिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
सवाहणा दंतपहोयणा य, संपुच्छणा देहपलोयणा य ॥३॥

अन्वयार्थ-१० सनिही-घी, गुड आदि वस्तुओ का सचय करना, ११ गिहिमत्ते-गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना, य-और, १२ रायपिंडे-राजपिंड का ग्रहण करना, १३ किमिच्छए-'तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछ कर जहाँ उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो, ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, १४ सवाहणा-मर्दन करना, य-और, १५ दंतपहोयणा-अंगुली आदि से दाँत धोना, १६ सपुच्छणा-गृहस्थो से सावद्य कुशल प्रश्न आदि पूछना, य-और, १७ देहपलोयणा-दर्पण आदि मे मुख देखना ॥३॥

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ॥४॥

अन्वयार्थ—१८ अट्ठावए-जूआ खेलना, य-और, नालीए-चौपड पासा, शतरंज आदि खेलना, य-और, १९ छत्तस्स धारणट्ठाए-छत्र धारण करना, २० तेगिच्छं-रोग का इलाज करना, २१ पाए पाहणा-पैरों में जूते आदि पहिनना, च-और २२ जोइणो-अग्नि का, समारंभं-आरम्भ करना ॥४॥

सिज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए।
गिहंतरनिसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ॥५॥

अन्वयार्थ—२३ सिज्जायरपिंड-शय्यातर का आहार लेना, च–और, २४ आसंदी–बेंत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, २५ पलियंकए-पलंग पर बैठना, २६ गिहंतरनिसिज्जा–गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, य–और, २७ गायस्सुव्वट्टणाणि–मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना।

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ॥६॥

अन्वयार्थ—२८ गिहिणो–गृहस्थ की, वेयावडियं-वैयावच्च करना अर्थात् उसे आहारादि देना, य–और, जा-जो, २९ आजीववत्तिया–जाति, कुल आदि बता कर आजीविका करना, ३० तत्तानिव्वुडभोइत्त–जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है, ऐसे मिश्र पानी का सेवन करना, य–और, ३१ आउरस्सरणाणि–रोग अथवा भूख से पीडित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना ॥६॥

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ॥७॥

अन्वयार्थ—३२ अनिव्वुडे-सचित्त, मूलए–मूला, य–और, ३३ सिंगबेरे–अदरख, ३४ उच्छुखंडे–इक्षुखण्ड–गंडेरी, य–और, ३५ कंदे–कन्द-वज्रकन्द आदि, ३६ सच्चित्ते–सचित्त, मूले–

मूल-जड़, ३७ फले-फल—आम, नीबू आदि, य-और ३८ आमए बीए-तिलादि सचित्त बीजो का सेवन करना ॥७॥

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥८॥

अन्वयार्थ— ३९ आमए-सचित्त सोवच्चले-सचल नमक, ४० सिंधवे लोणे-सैन्धव नमक, ४१ रोमालोणे-रोमा नमक, ४२ सामुद्दे-समुद्र का नमक, य-और, ४३ पंसुखारे-ऊषर नमक, य-और, ४४ आमए-सचित्त, कालालोणे-काला नमक का सेवन करना ॥८॥

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गायाब्भंगविभूसणे ॥९॥

अन्वयार्थ—४५ धूवणे त्ति-अपने वस्त्र आदि को धूप दे कर सुगन्धित करना, य-और, ४६ वमणे-औषधी आदि से वमन करना, ४७ वत्थीकम्म-मलादि की शुद्धि के लिए वस्ती कर्म करना, ४८ विरेयणे-जुलाव लेना, ४९ अंजणे-आँखो में अंजन लगाना, य-और, ५० दंतवणे-दतून से दाँत साफ करना, मस्सी आदि लगाना, ५१ गायाब्भंग-सहस्रपाक आदि तेलो से शरीर की मालिश करना, य-और, ५२ विभूसणे-शरीर को विभूषित करना ॥९॥

सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

अन्वयार्थ—सजमम्मि-सयम, य-और तप मे, जुत्ताणं-लगे हुए, सहुभूयविहारिण-वायु के समान अप्रतिबन्ध विहार करने वाले, निग्गथाण-निर्ग्रन्थ, महेसिण-महर्षियो के, एय-ये, सव्व-सभी, अणाइन्न-अनाचार है ॥१०॥

पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदसिणो ॥११॥

अन्वयार्थ—पचासवपरिण्णाया-पांच आश्रवो के त्यागी, तिगुत्ता-मन, वचन और काया गुप्ति से युक्त, छसु सजया-छ काय जीवो की रक्षा करने वाले, पचनिग्गहणा-पाँच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले, धीरा-परीषह उपसर्ग सहन करने मे धीर, उज्जुदसिणो-सरल स्वभावी, निग्गथा-निर्ग्रन्थ होते हैं ॥११॥

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥१२॥

अन्वयार्थ—सुसमाहिया-प्रशस्त समाधिवत, संजया-सयमी मुनि, गिम्हेसु-ग्रीष्म ऋतु मे, आयावयंति-सूर्य की आतापना लेते है, हेमतेसु-हेमन्त ऋतु मे, अवाउडा-अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते है, वासासु-वर्षा ऋतु मे, पडिसलीणा-कछुए की तरह इन्द्रियो को वश मे कर के रहते हैं ॥१२॥

भावार्थ—जिस ऋतु मे जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु मे मुनि वही तपस्या करते हैं ।

परीसहरिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया ।

सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥१३॥

अन्वयार्थ—**परीसहरिऊदता**-परीषह रूपी शत्रुओ को जीतने वाले, **धूअमोहा**-मोह-ममता के त्यागी, **जिइंदिया**-इद्रियों को जीतने वाले, **महेसिणो**-महर्षि, **सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा**-सभी दु खो का नाश करने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिये, **पक्कमंति**-पराक्रम करते हैं—सयम और तप मे प्रवृत्त होते है ॥१३॥

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य ।

के इत्थदेवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया ॥१४॥

अन्वयार्थ—**दुक्कराइं**-दुष्कर क्रियाओ को, **करित्ताणं**-कर के, **य**-और, **दुस्सहाइं**-दु सह कष्टो को, **सहित्तु**-सहन कर के, **केइ**-कितनेक, **देवलोएसु**-देवलोको मे उत्पन्न होते है और **केइत्थ**-कितने इसी भव मे, **नीरया**-कर्म रज से रहित हो कर, **सिज्झन्ति**-सिद्ध हो जाते हैं—मोक्ष चले जाते है ॥१४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।

सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे । त्ति बेमि ।

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

अन्वयार्थ—**सिद्धिमग्गं**-मोक्षमार्ग के, **अणुप्पत्ता**-साधक, **ताइणो**-छ काय जीवो के रक्षक मुनि, **संजमेण**-सयम से, **य**-और, **तवेण**-तप से, **पुव्वकम्माइं**-पहले बँधे हुए कर्मों को, **खवित्ता**-क्षय कर के, **परिनिव्वुडे**-निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥१५॥

त्ति बेमि-पूर्ववत् ।

'छज्जीवणिया' चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन मे छ काय जीवो का स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय वतलाया गया है—

सुय मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेण पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥१॥

अन्वयार्थ—**आउसं**-हे आयुष्मन् शिष्य ! **मे**-मैंने, **सुयं**-सुना है कि, **तेणं**-उन, **भगवया**-भगवान् ने, **एवं**-इस प्रकार, **अक्खायं**-कहा है कि, **इह**-इस जिनशासन मे, **खलु**-निश्चय से, **छज्जीवणिया**-छ काय के जीवो का कथन करने वाला, **नाम**-नामक, **अज्झयण**-अध्ययन है, **समणेण**-श्रमण-तपस्वी, **कासवेण**-काश्यप गोत्रीय, **भगवया**-भगवान्, **महावीरेण**-महावीर ने, **पवइया**-सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररूपणा की है, **सुअक्खाया**-सम्यक् प्रकार से कथन किया है, **सुपण्णत्ता**-भली प्रकार से वतलाया है। शिष्य ने पूछा—भगवन् ! क्या, **अज्झयणं**-उस अध्ययन का, **अहिज्जिउं**-अध्ययन करना-सीखना, **मे**-मेरे लिए, **सेवं**-कल्याणकारी है। गुरु ने कहा—हां ! **धम्मपण्णत्ती**-

उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ? ॥२॥

अन्वयार्थ—कयरा—वह छज्जीवणिया अध्ययन कौन-सा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिये कल्याणकारी है। शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥३॥

अन्वयार्थ—अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि इमा—वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

तंजहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया ॥

अन्वयार्थ—तंजहा—जैसे कि **पुढविकाइया**—पृथ्वीकायिक—पृथ्वीकाय के जीव, **आउकाइया**—अप्कायिक—जल के जीव, **तेउकाइया**—तेउकायिक—अग्निकाय सम्बन्धी जीव, **वाउकाइया**—वायु क जीव, **वणस्सइकाइया**—वनस्पतिकाय के जीव, **तसकाइया**—त्रस काय के जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं। वणस्सई चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥४॥

अन्वयार्थ—**सत्थपरिणएण**-शस्त्र परिणत के, **अन्नत्थ**-अतिरिक्त, **पुढवी**-पृथ्वीकाय, **आऊ**-अप्काय, **तेऊ**-अग्निकाय, **वाऊ**-वायुकाय और, **वणस्सई**-वनस्पतिकाय, **चित्तमतमक्खाया**-सचित्त कही गई है, **अणेगजीवा**-वह अनेक जीवो वाली है, **पुढोसत्ता**-उसमे अनेक जीव पृथक्-पृथक् रहे हुए हैं।

भावार्थ—पांचो स्थावरकाय सचित्त है। वे अनेक जीव रूप हैं। उन जीवो का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। इन कायो के जो-जो शस्त्र हैं, उनसे जब तक परिणत न हो जाय अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाय, तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं। आगे वनस्पतिकाय का विशेप वर्णन करते हैं—

तंजहा—अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया बीयरुहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया

चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ॥५॥

अन्वयार्थ—**तंजहा**–वह इस प्रकार है, **अग्गबीया**–ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है, जैसे कोरट का वृक्ष, **मूलबीया**-जिसका बीज मूल भाग मे होता है, जैसे कंद आदि, **पोरबीया**–जिसका बीज पर्व-गॉठ मे होता है, जैसे गन्ना आदि, **खंधबीया**-जिसका बीज स्कन्ध मे होता है, जैसे वड, पीपल आदि, **बीयरूहा**–बीज से उगने वाली वनस्पति, जैसे चौबीस प्रकार के धान्य, **संमुच्छिमा**–बिना बीज के अपने आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति, जैसे अकुर आदि, **तणलया**–तृण, लता आदि ये सब, **वणस्सइकाइया**–वनस्पतिकायिक है, **अणेगजीवा**–उसमे अनेक जीव हैं, **पुढोसत्ता**–वे भिन्न-भिन्न सत्ता वाले है, **सत्थपरिणएणं**–शस्त्र परिणत के, **अन्नत्थ**–अतिरिक्त, **सबीया**–बीज सहित वनस्पति, **चित्तमतमक्खाया**–सचित्त कही गई हैं। अब त्रसकाय का वर्णन किया जाता है—

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तजहा—अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेंसि केंसि च पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया जे य कीडपयंगा, जा य कुथु पिवीलिया सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे

पंचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे णेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओत्ति पवुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ— से-अब, जे-जो, इमे-ये आगे कहे जाने वाले, **तसा पाणा**-त्रस प्राणी हैं, वे पुण-फिर, अणेगे-अनेक तथा बहवे-बहुत प्रकार के है। **तंजहा**-जैसे कि, अडया-अडे से उत्पन्न होने वाले, **पोयया**-पोतज-जन्म के समय चर्म मे आवृत्त हो कर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले, जराउया-जरायु सहित पैदा होने वाले, रसया-रस मे उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादिक, **ससेइमा**-पसीने से उत्पन्न होने वाले, **समुच्छिमा**-सम्मूर्च्छिम-देव नारकी के अतिरिक्त बिना माता-पिता के सयोग से होने वाली जीवो की उत्पत्ति, उब्भिया-जमीन को फोड कर उत्पन्न होने वाले, उववाइया-उपपात जन्म वाले देव, नारकी आदि, **जेसिं केसिं च**-इनमे से कोई-कोई, पाणाण-प्राणो, **अभिक्कतं**-सामने आना, पडिक्कंतं-पीछे सरकना, सकुचिय-शरीर को सकुचित कर लेना, पसारिय-शरीर को फैलाना, रुय-शब्द का उच्चारण करना, भतं-इधर-उधर भ्रमण करना, तसिय-भयभीत होना, पलाइय-डर से भागना, आगइगइ-आगति और गति, विन्नाया-आदि क्रियाओ को जानने वाले हैं, य-और जे-जो, **कीडपयंगा**-कीड़े और पतगे है, य-और जा-जो, कुथुपिपीलिया-कुथुवा और चीटियाँ है, वे **सव्वं**-सभी, **बेइं-दिया**-बेइन्द्रिय, सव्वे-सभी, **तेइंदिया**-तेइन्द्रिय, **सव्वे**-सभी, **चउरि-**

दिया–चौरिन्द्रिय, सव्वे–सभी, पंचिंदिया–पंचेन्द्रिय, सव्वे–सभी, तिरिक्खजोणिया–तिर्यंच, सव्वे–सभी, नेरइया–नारकी के जीव, सव्वे–सभी, मणुआ–मनुष्य, सव्वे–सभी, देवा–देव, सव्वे–सभी, पाणा–प्राणी, परमाहम्मिया–परम सुख के अभिलाषी है। एसो–यह, खलु–निश्चय कर के, छट्ठो–छठा, जीवनिकाओ–जीवनिकाय, तसकाओत्ति–त्रसकाय, पवुच्चइ–कहा जाता है।

भावार्थ—सभी प्राणी सुख को चाहते हैं। अत किसी की हिंसा नही करनी चाहिए।

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्नेहिं दडं समारंभाविज्जा, दंड समारभतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंत पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥७॥

अन्वयार्थ—मुनि, इच्चेसिं–इन, छण्हं–छ, जीवनिकायाणं–जीवनिकायो के, दंड–हिंसा रूप दड का, सयं–स्वय, नेव समारंभिज्जा–आरम्भ न करे, अन्नेहिं–दूसरो से, दंडं–हिंसा रूप दड का, नेव समारंभाविज्जा–आरम्भ न करावे और, दंड–हिंसा रूप दण्ड का, समारंभंते–आरम्भ करते हुए, अन्नेऽवि–अन्य जीवो को, न समणुजाणिज्जा–भला भी न समझे। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं, जावज्जीवाए–जीवन पर्यंत, तिविहं–तीन करण से–

करना, कराना और अनुमोदना से और तिविहेण—तीन योग अर्थात् मणेणं—मन से, वायाए—वचन से और काएणं—काया से, न करेमि—न करूँगा, न कारवेमि—न कराऊँगा और करंतपि—करते हुए, अन्न—दूसरे को, न समणुजाणामि—भला भी नही समझूंगा। भंते—हे भगवन्! तस्स—उस दण्ड का, पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदामि—आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ, गरिहामि—गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ। अप्पाणं—हिंसा दण्ड सेवन करने वाले पापात्मा को, वोसिरामि—त्यागता हूँ।

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा नेव अन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥८॥ (१)

अन्वयार्थ—भंते—हे भगवन्! पढमे—प्रथम, महव्वए—महाव्रत मे, पाणाइवायाओ—प्राणातिपात से, वेरमणं—निवर्तन होता है, अत: भंते—हे भगवन्! मैं, सव्वं—सभी प्रकार की, पाणाइवायं—प्राणातिपात रूप हिंसा का, पच्चक्खामि—त्याग करता हूँ,

से-अब से ले कर, सुहुम-सूक्ष्म, वा-अथवा, बायरं-वादर, तसं-त्रस, वा-अथवा, थावर-स्थावर प्राणियो के, पाणे-प्राणों को, सय-स्वयं, न अइवाइज्जा-हनन नही करूँगा और नेव-न, अन्नेहिं-दूसरो से, पाणे-प्राणियो के प्राणो का, अइवाया-विज्जा-हनन कराऊँगा । पाण-प्राणियो के प्राणो का, अइवा-यंते-हनन करने वाले, अन्नेऽवि-दूसरो को, न समणु-जाणिज्जा-भला भी नही जानूंगा, जावज्जीवाए-जीवन पर्यंत, तिविह-तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से, तिविहेणं-तीन योग अर्थात्, मणेणं-मन से, वायाए-वचन से, काएणं-काया से, न करेमि-न करूँगा, न कारवेमि-न कराऊँगा, करंतपि-करते हुए, अन्ने-दूसरो को, न समणुजाणामि-भला भी नही समझूंगा, भंते-हे भगवन् ! मैं, तस्स-उस हिंसा रूपी पाप से, पडिक्कमामि-निवृत्त होता हूँ, निंदामि-उस पाप की निन्दा करता हूँ, गरिहामि-गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं-हिंसा रूप दण्ड सेवन करने वाली आत्मा को, वोसिरामि-त्यागता हूँ, भंते-हे भगवन् ! मैं, सव्वाओ-सभी, पाणाइवायाओ-प्राणाति-पात से, वेरमणं-निवृत्ति रूप, पढमे-प्रथम, महव्वए-महाव्रत मे, उवट्ठिओमि-उपस्थित होता हूँ ।

भावार्थ—शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रत के पालन में सावधान होता हूँ और पूर्वकाल में किये हुए हिंसा सम्बन्धी पाप से निवृत्त होता हूँ ।

अहावरे दुच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेर-

मणं, सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा, नेव सयं मुसं वइज्जा नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥६॥ (२)

अन्वयार्थ—**भंते**—हे भगवन् ! **अहावरे**—इसके बाद, **दुच्चे**—दूसरे, **महव्वए**—महाव्रत मे, **मुसावायाओ**—मृषावाद से, **वेरमणं**—निवर्तन होता है। **भंते**—हे भगवन् ! मैं, **सव्वं**—सभी प्रकार के, **मुसावायं**—मृषावाद का, **पच्चक्खामि**—त्याग करता हूँ। **से**—वह इस प्रकार, **कोहा**—क्रोध से, **वा**—अथवा, **लोहा वा**—लोभ से, **भया वा**—भय से अथवा **हासा वा**—हँसी से, **सयं**—मैं स्वयं, **मुसावायं**—असत्य, **नेव वइज्जा**—नही बोलूंगा, **नेवऽन्नेहिं**—न दूसरो से, **मुसं**—असत्य, **वायाविज्जा**—बोलाऊँगा, **मुसं**—असत्य, **वयंतेऽवि**—बोलते हुए, **अन्ने**—दूसरों को, **न समणुजाणिज्जा**—भला भी नही समझूंगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। **भंते**—हे भगवन् ! मैं, **सव्वाओ**—सभी, **मुसावायाओ**—मृषावाद को, **वेरमणं**—त्याग रूप, **दुच्चे**—दूसरे, **महव्वए**—महाव्रत मे, **उवट्ठिओमि**—उपस्थित होता हूँ।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं। सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा रण्णे वा अप्पं वा बहु वा अणुं वा थूलं वा चित्तमतं वा अचित्तमतं वा नेव सयं अदिण्णं गिण्हिज्जा नेवन्नेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा अदिण्णं गिण्हते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ॥१०॥(३)

अन्वयार्थ—भंते–हे भगवन्! अहावरे–इसके वाद, तच्चे–तीसरे, महव्वए–महाव्रत मे, अदिण्णदाणाओ–अदत्तादान से, वेरमणं–निवर्तन होता है, भते–हे भगवन्! मै, सव्वं–सभी प्रकार के, अदिण्णंदाणं–अदत्तादान का, पच्चक्खामि–प्रत्याख्यान करता हूँ, से–वह इस प्रकार कि, गामे–ग्राम मे, वा–अथवा नगरे वा–नगर मे अथवा रण्णे वा–वन मे, अप्पं वा–अल्प अथवा बहु वा–बहुत, अणु–सूक्ष्म, वा–अथवा थूल वा–स्थूल, चित्तमतं वा–सचेतन अथवा अचित्तमंत वा–अचेतन आदि किसी भी, अदिण्णं–बिना दिये हुए पदार्थ को, सयं–मै स्वयं, नेवगिण्हिज्जा–ग्रहण नही करूँगा, नेवऽन्नेहिं–न दूसरो से,

अदिन्न-बिना दिये हुए पदार्थ को, गिण्हाविज्जा-ग्रहण कराऊँगा और अदिन्न-बिना दिये हुए पदार्थ को, गिण्हते वि-ग्रहण करते हुए, अन्नं-दूसरो को, न समणुजाणिज्जा-भला भी नही समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है। भंते-हे भगवन्! मैं, अदिन्नादाणाओ-अदत्तादान से, वेरमणं-निवृत्ति रूप, तच्चे-तीसरे, महव्वए-महाव्रत मे, उवट्ठिओमि-उपस्थित होता हूँ।

अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं। सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा, नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥११॥ (४)

अन्वयार्थ—भंते-हे भगवन्! अहावरे-इसके बाद, चउत्थे-चौथे, महव्वए-महाव्रत मे, मेहुणाओ-मैथुन से, वेरमणं-निवर्तन होता है। भंते-हे भगवन्! मैं, सव्वं-सभी प्रकार के, मेहुणं-मैथुन का, पच्चक्खामि-प्रत्याख्यान करता हूँ, से-वह इस प्रकार कि, दिव्वं-देव सम्बन्धी, वा-अथवा,

माणुसं वा–मनुष्य सम्बन्धी अथवा तिरिक्खजोणियं वा–तिर्यंच सम्बन्धी, इन तीनो जातियो मे किसी के भी साथ, मेहुणं–मैथुन को, सयं–मैं स्वय, नेवसेविज्जा–सेवन नही करूँगा, नेवऽन्नेहिं–न दूसरो से, मेहुणं–मैथुन, सेवाविज्जा–सेवन कराऊँगा और मेहुणं–मैथुन, सेवतेऽवि–सेवन करने वाले, अन्ने–दूसरो को, न समणुजाणिज्जा–भला भी नही समझूंगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शव्दो का अर्थ पूर्ववत् है। भते–हे भगवन् ! मैं, सव्वाओ–सभी प्रकार के, मेहुणाओ–मैथुन से, वेरमणं–निवृत्ति रूप, चउत्थे–चौथे, महव्वए–महाव्रत मे, उवट्ठिओमि–उपस्थित होता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ।

अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं। सव्व भते ! परिग्गहं पच्चक्खामि से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूल वा चित्तमतं वा अचित्तमतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥(५)

अन्वयार्थ—**भंते**—हे भगवन् ! **अहावरे**—इसके बाद, **पंचमे**—पांचवे, **महव्वए**—महाव्रत मे, **परिग्गहाओ**—परिग्रह से, **वेरमणं**—निवर्तन होता है। अत **भंते**—हे भगवन् ! मैं, **सव्व**—सभी प्रकार के, **परिग्गह**—परिग्रह को, **पच्चक्खामि**—त्यागता हूँ, **से**—वह इस प्रकार है, **अप्पं वा**—अल्प अथवा **बहु वा**—बहुत, **अणुं वा**—सूक्ष्म अथवा **थूल वा**—स्थूल, **चित्तमंत वा**—सचेतन, **अचित्तमंत वा**—अथवा अचेतन, **परिग्गह**—परिग्रह को, **सयं**—मैं स्वयं, **नेव परिगिण्हिज्जा**—ग्रहण नही करूँगा, **नेवऽन्नेहिं**—न दूसरो से, **परिग्गह**—परिग्रह को, **परिगिण्हाविज्जा**—ग्रहण कराऊँगा, **परिग्गह**—परिग्रह को, **परिगिण्हतेऽवि**—ग्रहण करने वाले, **अन्ने**—दूसरो को, **न समणुजाणिज्जा**—भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। **भंते**—हे भगवन् ! मैं, **सव्वाओ**—सभी प्रकार के, **परिग्गहाओ**—परिग्रह से, **वेरमणं**—निवर्तन रूप, **पंचमे**—पाँचवे, **महव्वए**—महाव्रत मे, **उवट्ठिओमि**—उपस्थित होता हूँ।

भावार्थ—शिष्य सभी प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाँचवे महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भंते ! वए राइभोयणाओ वेरमणं। सव्वं भंते ! राइभोयण पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए

काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं। इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए, उवसंपज्जित्ता ण विहरामि ॥१३॥ (६)

अन्वयार्थ—भते–हे भगवन्! अहावरे–इसके वाद, छट्ठे–छठे, वए–व्रत मे, **राइभोयणाओ**–रात्रि भोजन का, **वेरमणं**–त्याग होता है, अत भते–हे भगवन्! मे, **सव्व**–सभी प्रकार के, **राइभोयण**–रात्रि भोजन का, **पच्चक्खामि**–त्याग करता हूँ। **से**–वह इस प्रकार है कि, **असणं वा**–अन्नादि अथवा **पाण वा**–पानी आदि अथवा **खाइमं वा**–खाद्य, मेवा अथवा **साइमं वा**–स्वाद्य—लोग, इलायची आदि, **सयं**–मै स्वय, **राइं**–रात्रि मे, **नेव**–नही, **भुंजिज्जा**–खाऊँगा, **नेवन्नेहिं**–न दूसरो को, **राइं**–रात्रि मे, **भुंजाविज्जा**–खिलाऊँगा और **राइ**–रात्रि मे, **भुंजतेऽवि**–भोजन करने वाले, **अन्ने**–दूसरो को, **न समणुजाणिज्जा**–भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। **भते**–हे भगवन्! मे, **सव्वाओ**–सभी प्रकार के, **राइभोयणाओ**–रात्रि भोजन से, **वेरमण**–निवृत्ति रूप, **छट्ठे**–छठे, **वए**–व्रत मे, **उवट्ठिओमि**-उपस्थित होता हूँ।

इच्चेयाइ–ये पहले कहे हुए, **पंच महव्वयाइं**–पांच महाव्रतों

को और राइभोयणवेरमण छट्ठाइ–रात्रि भोजन विरमण रूप छठे व्रत को, अत्तहियट्ठयाए–आत्म कल्याण के लिए, उवसपज्जित्ता ण–स्वीकार कर के मै, विहरामि–सयम में विचरता हूँ ।

भावार्थ—अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिसा आदि पाँच महाव्रतो को और छठे रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है ।

छ काय के जीवो की रक्षा के बिना चारित्र धर्म का पालन नही हो सकता । अत छ काय के जीवो की रक्षा के विषय मे सूत्रकार कहते हैं—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा न विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा विलिहतं वा, घट्टतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न

समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१४॥(१)

अन्वयार्थ— सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे— सयमी, पाप से विरक्त, कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप-कर्मों के बन्ध का प्रत्याख्यान करने वाला, **से—** वह पूर्वोक्त महाव्रतो को धारण करने वाला, **भिक्खु—**साधु, **वा—** अथवा **भिक्खुणी वा—**साध्वी, **दिया वा—**दिन मे अथवा **राओ वा—** रात्रि मे, **एगओ वा—**अकेला अथवा **परिसागओ वा—**साधु समूह मे, **सुत्ते वा—**सोते हुए **जागरमाणे वा—**अथवा जागते हुए, **से—** इस प्रकार, **पुढविं वा—**पृथ्वी को अथवा **भित्तिं वा—**दीवार को, **सिलं वा—**शिला को अथवा **लेलुं वा—**ढेले को, **ससरक्खं वा-कायं—**सचित्त रज सहित शरीर को अथवा **ससरक्खं वा वत्थं—** सचित्त रज सहित वस्त्रो को, **हत्थेण वा—**हाथ से अथवा **पाएण वा—**पैर से, **कट्ठेण वा—**लकडी से अथवा **किलिंचेण वा—**डडे से, **अंगुलियाए वा—**अगुलि से अथवा **सिलागाए वा—**लोहे की छड से अथवा **सिलागहत्थेण वा—**लोहे की छड़ियो के समूह से, **न आलिहिज्जा—**सचित्त पृथ्वी पर लिखे नही, **न विलिहिज्जा—**विशेष लिखे नही, **न घट्टिज्जा—**एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाले नही, **न भिंदिज्जा—**भेदन न करे, **अन्नं—**दूसरे से, **न आलिहाविज्जा—**लिखावे नही, **न विलिहाविज्जा—**विशेष ओरो से लिखावे नही, **न घट्टाविज्जा—**एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नही, **न भिंदाविज्जा—**भेदन न करावे, **आलिहंतं वा—**

लिखने वाले, **विलिहतं वा**–विशेप लिखने वाले, **घट्टंतं वा**–एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले, **भिंदतं वा**–भेदन करने वाले, **अन्न**–दूसरो को, **न समणुजाणिज्जा**–भला भी नही समझे। शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं, **जावज्जीवाए**–जीवन पर्यन्त, **तिविहं**–तीन करण और **तिविहेणं**–तीन योग से अर्थात् **मणेणं**–मन से, **वायाए**–वचन से, **काएणं**–काया से, **न करेमि**–न करूँगा, **न कारवेमि**–न कराऊँगा, **करंत पि**–करते हुए, **अन्नं**–दूसरो को, **न समणुजाणामि**–भला भी नही समझूँगा। **भंते**–हे भगवन् ! मैं, **तस्स**–उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से, **पडिक्कमामि**–पृथक् होता हूँ, **निंदामि**–आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ, **गरिहामि**–गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, **अप्पाणं**–ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को, **वोसिरामि**–हटाता हूँ।

भावार्थ—इस सूत्र मे पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है। अब आगे के सूत्र मे अप्काय की यतना का वर्णन किया जायगा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरितणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न

संफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा, अन्नं न आमुसाविज्जा न संफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीलाविज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंत वा अक्खोडंतं वा पक्खोडंत वा आयावतं वा पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१५॥(२)

अन्वयार्थ—"से भिक्खू वा से जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, उदगं वा—जल को, ओसं वा—ओस को, हिमं वा—बर्फ को, महियं वा—धूंअर के पानी को, करगं वा—ओले के पानी को, हरितणुगं वा—हरियाली पर पड़े हुए जल बिन्दुओ को, सुद्धोदगं वा—आकाश से गिरे हुए जल को, उदउल्ल वा काय—जल से भीगे हुए शरीर को, उदउल्ल वा वत्थ—जल से भीगे हुए वस्त्र को, ससिणिद्धं वा कायं—कुछ-कुछ भीगे हुए शरीर को, ससिणिद्धं वा वत्थं—कुछ-कुछ भीगे हुए वस्त्र को, न आमुसिज्जा—जरा भी स्पर्श न करे, न संफुसिज्जा—अधिक स्पर्श न करे, न आवीलिज्जा—एक बार न निचोड़े

न पवीलिज्जा–वार-वार न निचोडे, न अक्खोडिज्जा–न झटके, न पक्खोडिज्जा–वार वार न झटके, न आयाविज्जा–न सुखावे, न पयाविज्जा–वार-वार न सुखावे, अन्न–दूसरे से, न आमुसा-विज्जा–जरा भी स्पर्श न करावे, न सफुसाविज्जा–वार-वार स्पर्श न करावे, न आवीलाविज्जा–न निचोडवावे, न पवीला-विज्जा–वार-वार न निचोडवावे, न अक्खोडाविज्जा–झटकावे नही, न पक्खोडाविज्जा–वार-वार झटकावे नही, न आया-विज्जा–न सुखवावे, न पयाविज्जा–वार-वार न सुखवावे तथा आमुसत वा–जरा भी स्पर्श करने वाले, सफुसंत वा–वार-वार स्पर्श करने वाले, आवीलत वा–निचोडने वाले, पवीलत वा–वार-वार निचोडने वाले, अक्खोडत वा–झटकाने वाले, पक्खो-डत वा–वार-वार झटकाने वाले, आयावत वा–सुखाने वाले, पयावत वा–वार-वार सुखाने वाले, अन्न–दूसरे को, न समणुजा-णिज्जा–भला नही समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक का पूर्ववत् अर्थ है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परि-सागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चि वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा न उंजिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा न उज्जालिज्जा न पज्जालिज्जा न निव्वाविज्जा, अन्नं न उंजाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा न उज्जा-

लाविज्जा न पज्जालाविज्जा न निव्वाविज्जा, अन्नं उंजंत वा घट्टंतं वा भिदंतं वा उज्जालंतं वा पज्जालतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ—"से भिक्खू वा से जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् । साधु अथवा साध्वी, **अगणि वा**–अग्नि को, **इंगाल वा**–अंगारे को, **मम्मुरं वा**–चिनगारी, वकरी आदि के मीगणो की अग्नि को, **अच्चि वा**–दीपक की शिखा की अग्नि को, **जालं वा**–अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को, **अलायं वा**–जलता हुआ कडा या काष्ठ की अग्नि को, **सुद्धागणि वा**–काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को, **उक्क वा**–उल्कापात रूप अग्नि को, **न उजिज्जा**–ईंधन डाल कर न बढावे, **न घट्टिज्जा**–सघट्टा न करे, **न भिदिज्जा**–छिन्न-भिन्न न करे, **न उज्जालिज्जा**-जरा भी न जलावे, **न पज्जालिज्जा**–प्रज्वलित न करे, **न निव्वाविज्जा**–न बुझावे, **अन्न**–दूसरे से, **न उंजाविज्जा**–ईंधन डाल कर न वढवावे, **न घट्टाविज्जा**–सघट्टा न करवावे, **न भिदाविज्जा**–छिन्न भिन्न न करवावे, **न उज्जालाविज्जा**–न जलवावे, **न पज्जालाविज्जा**–प्रज्वलित न करवावे, **न निव्वाविज्जा**–न बुझवावे तथा **उंजत वा**–ईंधन डाल कर वढाने वाले, **घट्टंत वा**–सघट्टा करने वाले, **भिदतं वा**–छिन्न-भिन्न करने वाले, **उज्जालंतं वा**–

जलाने वाले, पज्जालत वा–प्रज्वलित करने वाले, अन्न–दूसरे को, न समणुजाणिज्जा–भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अब वायुकाय की यतना के विषय मे वर्णन किया जाता है—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से सिएण वा विहुयणेण वा तालियटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वावि पुग्गलं न फुमिज्जा न वीएज्जा अन्न न फुमाविज्जा न वीआविज्जा अन्नं फुमंतं वा वीअंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥

अन्वयार्थ—"से भिक्खू वा से जागरमाणे" तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी, सिएण वा–चामर से, विहुयणेण वा–पखे से, तालियटेण वा–ताड़ वृक्ष के पखे से, पत्तेण वा–पत्तो से, पत्तभंगेण वा–पत्तो के टुकडो से, साहाए वा–शाखा से, साहाभगेण वा–शाखा के टुकडो से, पिहुणेण वा–मोर

के पखो से, पिहुणहत्थेण वा–मोरपिच्छी से, चेलेण वा–वस्त्र से, चेलकन्नेण वा–कपडे के पल्ले से, हत्थेण वा–हाथ से, मुहेण वा–मुख से, अप्पणो–अपने, काय–शरीर को, वा–अथवा बाहिर वा वि–बाहरी पुद्गलो को, न फुमिज्जा–फूंक न मारे, न वीएज्जा–पंखे आदि से हवा न करे, अन्नं–दूसरे से, न फुमाविज्जा–फूंक न लगवावे, न वीआविज्जा–पखे आदि से हवा न करावे, फुमत वा–फूंक देने वाले, वीअत वा–हवा करने वाले, अन्नं–दूसरे को, न समणुजाणिज्जा–भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अब वनस्पति-काय की यतना का वर्णन किया जाता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइटठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्त कोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुअट्टिज्जा अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीआविज्जा न तुअट्टाविज्जा अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीअंतं वा तुअट्टंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि

करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१८॥ (५)

अन्वयार्थ—'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् । साधु अथवा साध्वी, **बीएसु वा**-बीजों पर, **बीयपइट्ठेसु वा**-बीजों पर रखे हुए शयन आसनादि पर, **रूढेसु वा**-बीज उग कर जो अकुरित हुए हो, उन पर, **रूढपइट्ठेसु वा**-अकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, **जाएसु वा**-पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर, **जायपइट्ठेसु वा**-पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, **हरिएसु वा**-हरी दूब आदि पर, **हरियपइट्ठेसु वा**-हरी दूब आदि पर रखे हुए आसनादि पर, **छिन्नेसु वा**-वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर, **छिन्नपइट्ठेसु वा**-वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर रखे हुए आसनादि पर, **सचित्तेसु वा**-ऐसी वनस्पति जिस पर अण्डा आदि हो, **सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा**-घुन लगे हुए काठ पर, **न गच्छेज्जा**-न चले, **न चिट्ठेज्जा**-खड़ा न होवे, **न निसीइज्जा**-न बैठे, **न तुअट्टिज्जा**-न सोवे, **अन्नं**-दूसरे को, **न गच्छाविज्जा**-न चलावे, **न चिट्ठाविज्जा**-न खडा करे, **न निसीआविज्जा**-न बैठावे, **न तुअट्टाविज्जा**-न सुलावे, **गच्छंतं वा**-चलते हुए, **चिट्ठंतं वा**-खड़े हुए, **निसीअंतं वा**-बैठते हुए, **तुअट्टंतं वा**-सोते हुए, **अन्नं**-दूसरे को, **न समणुजाणिज्जा**-भला भी न जाने । 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् । आगे त्रसकाय की यतना का

वर्णन किया जाता है—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंग वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा उरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कबलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रय-हरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणि-ज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा ॥१९॥ (६)

अन्वयार्थ—'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् । साधु अथवा साध्वी, **कीड वा**–कीडे-मकोडे को, **पयगं वा**–पतंगे को, **कुथुं वा**–कुथुवा को, **पिपीलियं वा**–चीटी को, **हत्थंसि वा**–हाथ पर, **पायंसि वा**–पाँव पर, **बाहुंसि वा**–भुजा पर, **ऊरुंसि वा**–जांघ पर, **उदरंसि वा**–पेट पर, **सीसंमि वा**–सिर पर, **वत्थंसि वा**–वस्त्र पर, **पडिग्गहंसि वा**–पात्र पर, **कबलंसि वा**–कम्बल पर, **पायपुच्छणंसि वा**–पैर पोछने के उप-करण विशेष पर, **रयहरणंसि वा**–रजोहरण पर, **गोच्छगंसि वा**–पूंजनी पर या पात्रो को पोछने के वस्त्र पर, **उडगंसि वा**–

स्थण्डिल पात्र पर, दडगंसि वा–दण्डे पर, पीढगंसि वा–चौकी पर, फलगंसि वा–पाटे पर, सेज्जंसि वा–शय्या पर, संथारगंसि-वा–सथारे पर, वा–अथवा तहप्पगारे–इसी प्रकार के, अन्नयरंसि वा–किसी दूसरे, उवगरणजाए–उपकरण पर पड़े हुए कीड़े आदि जीव को, तओ–उस स्थान से अर्थात् हाथ-पैर आदि पर से, संजयामेव–यतना पूर्वक, पडिलेहिय पडिलेहिय–बार-बार भली प्रकार से प्रतिलेखना कर के, पमज्जिय पमज्जिय–बार-बार सम्यक् प्रकार से पूंज कर, एगंतं–एकान्त स्थान में, अवणिज्जा–रख दे, किन्तु उन जीवों को, नो णं संघायमावज्जेज्जा–पीड़ा पहुँचे, इस प्रकार इकट्ठा कर के न रखे कि जिससे उन्हें पीड़ा हो।

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥१॥
अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥२॥
अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥३॥
अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होई कडुयं फलं ॥४॥
अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥५॥
अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥६॥

अन्वयार्थ—अजय—अयतना पूर्वक, **चरमाणो**—चलता हुआ, **चिट्ठमाणो**—खडा होता हुआ, **आसमाणो**—बैठता हुआ, **सयमाणो**—सोता हुआ, **भुंजमाणो**—भोजन करता हुआ और **भासमाणो**—बोलता हुआ व्यक्ति, **पाणभूयाइं**—त्रस-स्थावर जीवो की, **हिंसइ**—हिंसा करता है। **अ**—जिससे, **पावय**—पाप, **कम्म**—कर्म का, **बधइ**—बन्ध होता है। **तं**—वह पाप कर्म, **से**—उस प्राणी के लिए **कडुयं**—कटुक, **फल**—फलदायी, **होइ**—होता है ॥१—६॥

भावार्थ—इन छ गाथाओ मे अयतनापूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने आदि का कटु फल बतलाया गया है, जो स्वय उसी आत्मा को भोगना पडता है।

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बधइ ॥७॥

अन्वयार्थ—अब शिष्य प्रश्न करता है कि—हे भगवन्! यदि ऐसा है, तो मुनि **कहं**—कैसे, **चरे**—चले, **कहं**—कैसे, **चिट्ठे**—खडा रहे, **कहं**—कैसे, **आसे**—बैठे, **कहं**—कैसे, **सए**—सोवे, **कहं**—कैसे, **भुंजतो**—भोजन करता हुआ और **कहं**—कैसे, **भासतो**—बोलता हुआ, **पाव**—पाप, **कम्मं**—कर्म, **न**—नही, **बधइ**—बाँधता है ॥७॥

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥८॥

अन्वयार्थ—गुरु उत्तर देते हैं कि **जयं**—यतनापूर्वक, **चरे**—

चले, जयं–यतनापूर्वक, चिट्ठे–खडा रहे, जय–यतनापूर्वक, आसे–बैठे, जय–यतनापूर्वक, सए–सोवे, जय–यतनापूर्वक, भुजतो–भोजन करता हुआ और जय–यतनापूर्वक, भासतो–बोलता हुआ, पाव–पाप, कम्मं–कर्म, न–नही, बधइ–बांधता है।

सव्वभूयप्पभूयस्स, संम भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दतस्स, पावं कम्मं न वंधइ ॥९॥

अन्वयार्थ— सव्वभूयप्पभूयस्स–ससार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझने वाले, समं-सम्यक् प्रकार से, भूयाइ–सभी जीवो को, पासओ–देखने वाले, पिहियासवस्स–आश्रवो को रोकने वाले और दतस्स–इन्द्रियो को दमन करने वाले के, पाव–पाप, कम्म–कर्म, न–नही, बधइ-बँधता है ॥९॥

पढमं नाणं तओ दया, एव चिट्ठइ सव्वसजए ।
अन्नाणी किं काही, कि वा नाही सेयपावगं ॥१०॥

अन्वयार्थ—पढम–पहले, नाण–ज्ञान है, तओ–उसके पश्चात्, दया–दया है, एव–इस प्रकार, सव्व सजए-सभी साधु, चिट्ठइ–आचरण करते है। अन्नाणी–सम्यक् ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष, किं–क्या, काही–कर सकता है और किंवा–कैसे, सेय-पावगं-पुण्य और पाप को, नाही–जान सकता है।

भावार्थ—सब से पहला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी, जिसे साध्य-साधन का भी ज्ञान नही है, वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण

और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥११॥

अन्वयार्थ—**सोच्चा**–सुन कर ही, **कल्लाणं**–कल्याण को, **जाणइ**–जानता है, **सोच्चा**–सुन कर ही, **पावगं**–पाप को, **जाणइ**–जानता है और **उभयं पि**–दोनो को भी, **सोच्चा**–सुन कर ही, **जाणइ**–जानता है, अत **ज**–जो, **सेय**–आत्मा के लिए हितकारी हो, **त**–उसका, **समायरे**–आचरण करे ॥११॥

भावार्थ—हिताहित का ज्ञान सुन कर ही होता है । इस-लिए इनमे से जो श्रेष्ठ हो, उसी मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥१२॥

अन्वयार्थ—**जो**–जो, **जीवे वि**–जीव के स्वरूप को, **न**–नही, **याणेइ**–जानता और **अजीवे वि**–अजीव के स्वरूप को भी, **न**–नही, **याणेइ**–जानता । **जीवाजीवे**–इस प्रकार जीवाजीव के स्वरूप को, **अयाणतो**–नही जानने वाला, **सो**–वह साधक, **सजमं**–सयम को, **कहं**–कैसे, **नाहीइ**–जानेगा अर्थात् नही जान सकता ॥१२॥

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं ॥१३॥

अन्वयार्थ—**जो**-जो, **जीवे वि**-जीव का स्वरूप, **वियाणेइ**-जानता है तथा **अजीवे वि**-अजीव का स्वरूप भी, **वियाणेइ**-जानता है। इस प्रकार, **जीवाजीवे**-जीव और अजीव के स्वरूप को, **वियाणतो**-जानने वाला, **सो**-वह साधक, **हु**-निश्चय ही, **सजम**-सयम के स्वरूप को, **नाहीइ**-जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणइ।
तया गइ बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥१४॥

अन्वयार्थ—**जया**-जब आत्मा, **जीवमजीवे**-जीव और अजीव, **ए ए**-इन दोनो को, **वियाणइ**-जान लेता है, **तया**-तव, **सव्व जीवाण**-सभी जीवो की, **बहुविह**-वहुत भेदो वाली, **गइ**-नरक, तिर्यंच आदि नानाविध गति को भी, **जाणइ**-जान लेता है ॥१४॥

भावार्थ—इस गाथा मे तथा आगे की गाथाओ मे ज्ञान प्राप्ति से ले कर मोक्ष प्राप्ति तक का क्रम वतलाया गया है।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्ण च पाव च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥१५॥

अन्वयार्थ—**जया**-जव आत्मा, **सव्वजीवाण**-सभी जीवो की, **बहुविह**-वहुत भेदो वाली, **गइ**-नरक तिर्यंच आदि नानाविध गति को, **जाणइ**-जान लेता है, **तया**-तव, **पुण्णं**-पुण्य, **च**-और **पाव**-पाप को, **च**-तथा **बंध**-वन्ध, **च**-और **मुक्खं**-मोक्ष को भी, **जाणइ**-जान लेता है ॥१५॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।१६।

अन्वयार्थ—जया–जब, पुण्णं–पुण्य, च–और पाव–पाप को, च–तथा बंध–बन्ध, च–और मुक्ख–मोक्ष को भी, जाणइ–जान लेता है तया–तब, जे दिव्वे–जो देव, य–और जे माणुसे–मनुष्य सम्बन्धी, भोए–काम-भोग हैं, उनकी, निव्विदए–असारता को समझ कर उन्हे छोड देता है ॥१६॥

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतरबाहिरं ॥१७॥

अन्वयार्थ—जया–जब, जे दिव्वे–जो देव, य–और जे माणुसे–मनुष्य सम्बन्धी, भोए–काम-भोगो की, निव्विदए–असारता को समझ कर उन्हे छोड देता है, तया–तब, सब्भिंतरबाहिर–राग-द्वेष कषाय रूप आभ्यन्तर और माता-पिता तथा सम्पत्ति रूप वाह्य, संजोगं–सयोग को, चयइ–छोड देता है ।

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतरबाहिरं ।
तया मुण्डे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारियं ॥१८॥

अन्वयार्थ—जया–जब, सब्भिंतरबाहिरं–आभ्यन्तर और वाह्य, संजोगं–सयोग को, चयइ–छोड देता है, तया–तब, मुण्डे–द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताणं–हो कर, अणगारियं–अनगार वृत्ति को, पव्वइए–ग्रहण करता है ॥१८॥

जया मुण्डे भवित्ताण, पव्वइए अणगारिय ।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तर ॥१६॥

अन्वयार्थ—जया-जव, मुण्डे-द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताणं-हो कर, अणगारिय-अनगार वृत्ति को, पव्वइए-ग्रहण करता है, तया-तव, उक्किट्ठ-उत्कृष्ट और अणुत्तर-सर्वश्रेष्ठ, सवर धम्म-सवर धर्म को, फासे-प्राप्त करता है ॥१८॥

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तर ।
तया धुणइ कम्मरय, अवोहिकलुसं कडं ॥२०॥

अन्वयार्थ—जया-जव, उक्किट्ठ-उत्कृष्ट और अणत्तर-प्रधान, सवर धम्म-सवर धर्म को, फामे-प्राप्त करता है, तया-तव, अवोहिकलुस कड-आत्मा के मिथ्यात्व से उपार्जित किये हुए, कम्मरयं-कर्म रूपी रज को, धुणइ-झाड देता है ॥२०॥

जया धुणइ कम्मरयं, अवोहिकलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दसणं चाभिगच्छइ ॥२१॥

अन्वयार्थ— जया-जव, अवोहिकलुस कड-आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए, कम्मरयं-कर्म रूपी रज को, धुणइ-झाड देता है, तया-तव, सव्वत्तगं-सभी पदार्थों को जानने वाले, नाणं-केवल ज्ञान, च-और दंसणं-केवलदर्शन को, अभिगच्छइ-प्राप्त कर लेता है ॥२१॥

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

अन्वयार्थ—**जया**-जब, **सव्वत्तगं**-सभी पदार्थों को जानने वाले, **नाणं**-केवलज्ञान, **च**-और **दंसणं**-केवल दर्शन को, **अभिगच्छइ**-प्राप्त कर लेता है, **तया**-तब, **जिणो**-राग-द्वेष का विजेता, **केवली**-केवलज्ञानी हो कर, **लोग**-लोक, **च**-और **अलोग**-अलोक के स्वरूप को भी, **जाणइ**-जान लेता है ॥२२॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

अन्वयार्थ—**जया**-जब, **जिणो**-राग-द्वेप का विजेता, **केवली**-केवलज्ञानी हो कर, **लोग**-लोक, **च**-और **अलोगं**-अलोक को, **जाणइ**-जान लेता है, **तया**-तब आत्मा, **जोगे**-मन, वचन और काया के योगो का, **निरुंभित्ता**-निरोध कर के, **सेलेसिं**-शैलेशीकरण को, **पडिवज्जइ**-प्राप्त करता है ॥२३॥

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्म खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।२४।

अन्वयार्थ—**जया**-जब, **जोगे**-मन, वचन और काया के योगो का, **निरुंभित्ता**-निरोध कर के, **सेलेसिं**-शैलेशीकरण को, **पडिवज्जइ**-प्राप्त करता है, **तया**-तब आत्मा, **नीरओ**-कर्म रूपी रज से रहित हो कर और **कम्म**-समस्त कर्मों का, **खवित्ताणं**-क्षय कर के, **सिद्धि**-मोक्ष को, **गच्छइ**-चला जाता है ॥२४॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

अन्वयार्थ—जया–जब, नीरओ–कर्म रूपी रज से रहित हो कर और कम्मं–समस्त कर्मों का, खवित्ताणं–क्षय कर के, सिद्धिं–मोक्ष, गच्छइ–चला जाता है, तया–तब आत्मा, लोगमत्थयत्थो–लोक के अग्रभाग पर स्थित, सासओ–शाश्वत, सिद्धो–सिद्ध, हवइ–हो जाता है ॥२५॥

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥२६॥

अन्वयार्थ—सुहसायगस्स–सुख मे आसक्त रहने वाले, सायाउलगस्स–सुख के लिए व्याकुल रहने वाले, निगामसाइस्स–अत्यन्त सोने वाले, उच्छोलणा पहोयस्स–शरीर की विभूषा के लिए हाथ-पाँव आदि धोने वाले, तारिसगस्स समणस्स–साधु को, सुगई–सुगति मिलना, दुल्लहा–दुर्लभ है ॥२६॥

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स ॥२७॥

अन्वयार्थ—तवोगुणपहाणस्स–तप रूपी गुणो से प्रधान, उज्जुमइ–सरल बुद्धि वाले, खंतिसंजमरयस्स–क्षमा और सयम मे रत, परीसहे–परीषहो को, जिणंतस्स–जीतने वाले, तारिसगस्स–साधु को, सुगई–सुगति, सुलहा–सुलभ है ॥२७॥

भावार्थ—तप सयम मे अनुरक्त, सरल प्रकृति वाले तथा

असमाधि उत्पन्न करने वाले हैं ॥१६॥

भावार्थ—राजा आदि के गुप्त बातचीत करने के स्थान की ओर देखने से उन्हे साधु के प्रति क्रोध तथा अश्रद्धा आदि अनेक दोष उत्पन्न होने की सभावना रहती है।

पडिकुट्ठं कुलं ण पविसे, मामगं परिवज्जए।
अचियत्तं कुलं ण पविसे, चियत्तं पविसे कुलं ॥१७॥

अन्वयार्थ—साधु (पडिकुट्ठं) शास्त्र निषिद्ध (कुलं) कुल मे (ण पविसे) गोचरी के लिए न जावे तथा (मामगं) जिस घर का स्वामी यह कह दे कि मेरे घर मत आओ, ऐसे घर मे साधु (परिवज्जए) न जावे तथा (अचियत्तं) प्रतीति-रहित (कुलं) कुल मे (ण पविसे) न जावे, किन्तु (चियत्तं) प्रतीति वाले (कुलं) कुल मे (पविसे) जावे ॥१७॥

साणीपावारपिहियं, अप्पणा णावपंगुरे।
कवाडं णो पणुल्लिज्जा, उग्गहंसि अजाइया ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सि) घर के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) माँगे विना (साणीपावारपिहिय) सन आदि के बने हुए, परदे आदि से ढँके हुए घर को (अप्पणा) साधु स्वयं (णावपगुरे) न खोले अर्थात् परदे को न हटावे तथा (कवाडं) किंवाड को भी (णो) न (पणुल्लिज्जा) खोले ॥१८॥

गोयरग्गपविट्ठो य, वच्चमुत्तं ण धारए।
ओगासं फासुयं णच्चा, अणुण्णविय वोसिरे ॥१९॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्गपविट्ठो) गोचरी के लिए गया हुआ साधु (वच्च) मल (य) और (मुत्त) मूत्र को (ण धारए) न रोके अर्थात् मल-मूत्र की बाधा उपस्थित होने पर उनके वेग को न रोके, किन्तु (फासुय) प्रासुक—जीव-रहित (ओगास) स्थान (णच्चा) देख कर (अणुण्णविय) गृहस्थ की आज्ञा ले कर (वोसिरे) मल-मूत्र का त्याग करे ॥१९॥

भावार्थ—मल-मूत्र की शका से निवृत्त हो कर ही साधु को गोचरी के लिए जाना चाहिये। किन्तु कदाचित् रास्ते मे आकस्मिक शका हो जाय, तो निरवद्य स्थान देख कर एव उस स्थान के स्वामी की आज्ञा ले कर वहाँ शका का निवारण करे।

णीयदुवार तमसं, कुट्ठगं परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥२०॥

अन्वयार्थ—(णीयदुवार) जिस घर का द्वार बहुत नीचा हो, ऐसे घर को (तमस) प्रकाश-रहित, (कुट्ठग) कोठे को साधु, (परिवज्जए) छोड दे अर्थात् ऐसे घर मे आहार-पानी के लिए न जावे। (जत्थ) जहाँ, (अचक्खुविसओ) आँखो से भली प्रकार दिखाई न देने के कारण (पाणा) द्वीन्द्रियादिक प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) प्रतिलेखना नही हो सकती। अतएव उनकी विराधना होने की सभावना रहती है ॥२०॥

जत्थ पुप्फाइं बीयाइं, विप्पइण्णाइ कुट्ठए।
अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठूणं परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जत्थ) जिस (कोट्ठए) कोठे मे (पुप्फाइं) फूल और (बीयाइं) बीज, (विप्पइण्णाइं) विखरे हुए हो, उस घर को तथा (अहुणोवलित्त) तत्काल के लीपे हुए (उल्लं) गीले को, (दट्ठूण) देख कर, (परिवज्जए) छोड़ दे अर्थात् ऐसे स्थान मे साधु गोचरी न जावे ॥२१॥

एलगं दारगं साण, वच्छगं वावि कोट्ठए ।
उल्लघिया ण पविसे, विउहित्ताण व संजए ॥२२॥

अन्वयार्थ—(कोट्ठए) जिस कोठे के दरवाजे पर (एलगं) भेड़ हो, (दारगं) बालक हो, (साण) कुत्ता हो, (वच्छगं) बछडा हो (वावि) अथवा इस प्रकार के दूसरे अर्थात् बकरा, बकरी, पाडा, पाडी आदि हो, तो उन्हे (उल्लंघिया) उल्लंघन कर के अथवा (विउहित्ताण) हटा कर (संजए) साधु (ण पविसे) प्रवेश न करे ।

असंसत्तं पलोइज्जा, णाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं ण विणिज्झाए, णिअट्टिज्ज अयंपिरो॥२३॥

अन्वयार्थ—गोचरी के लिए गया हुआ साधु (असंसत्तं पलोइज्जा) किसी की ओर आसक्तिपूर्वक न देखे (णाइदूरा-वलोयए) घर के अन्दर दूर तक लम्बी दृष्टि डाल कर भी न देखे तथा (उप्फुल्लं) आँखे फाड-फाड कर टकटकी लगा कर (ण) न (विणिज्झाए) देखे। यदि वहाँ भिक्षा न मिले, तो (अयंपिरो) कुछ भी न बोलता हुआ अर्थात् दीन वचन न बोलता हुआ तथा क्रोध से बडबडाहट नही करता हुआ (णिअ-

ट्टिज्ज) वहाँ से लौट आवे ॥२३॥

अइभूमिं ण गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ॥२४॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मुणी) साधु (अइभूमि) अतिभूमि मे अर्थात् गृहस्थ की मर्यादित भूमि से आगे, उसकी आज्ञा के विना (ण गच्छेज्जा) न जावे, किन्तु (कुलस्स) कुल की (भूमि) भूमि को (जाणित्ता) जान कर (मिय भूमि) जिस कुल का जैसा आचार हो, वहाँ तक की परिमित भूमि मे ही (परक्कमे) जावे, क्योंकि परिमित मर्यादा से आगे जाने पर दाता क्रोधित हो सकता है ॥२४॥

तत्थेव पडिलेहिज्जा भूमिभागं वियक्खणो ।
सिणाणस्स य वच्चस्स, सलोगं परिवज्जए ॥२५॥

अन्वयार्थ—(वियक्खणो) भिक्षा के लिए गया हुआ विचक्षण साधु (तत्थेव) उस (भूमिभाग) मर्यादित भूमि की (पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे अर्थात उस भूमि को पूंज कर खडा रहे। वहाँ खडा हुआ साधू (सिणाणस्स) स्नान घर की ओर (य) और (वच्चस्स) पाखाने की ओर (संलोग) दृष्टि (परिवज्जए) न डाले ॥२५॥

भावार्थ—जहाँ खडे रहने से स्नानघर और पाखाना आदि दिखाई देते हो, तो विचक्षण साधु ऐसे स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान खडा हो जाय।

दगमट्टियआयाणे, बीयाणि हरियाणि य ।
परिवज्जतो चिट्ठिज्जा, सव्विदियसमाहिए ॥२६॥

अन्वयार्थ—(सव्विदियसमाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखता हुआ समाधिवंत मुनि (दगमट्टिय आयाणे) सचित्त जल और सचित्त मिट्टी युक्त स्थान को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरितकाय को (परिवज्जंतो) वर्ज कर (चिट्ठिज्जा) यतनापूर्वक खडा रहे ॥२६॥

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयणं ।
अकप्पियं ण गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) वहाँ मर्यादित भूमि मे (चिट्ठमाणस्स) खड हुए (से) साधु को दाता (पाणभोयण) आहार-पानी (आहरे) देवे, वहरावे और यदि आहारादि (कप्पियं) कल्पनीय हो, तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे, किन्तु (अकप्पिय) अकल्पनीय आहारादि (ण गिण्हिज्जा) ग्रहण न करे ॥२७॥

आहरंती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥२८॥

अन्वयार्थ—(आहरंती) आहार-पानी देती हुई बाई (सिया) कदाचित् (तत्थ) वहाँ (भोयण) आहार-पानी (परिसाडिज्ज) गिराती हुई लावे तो (दितियं) देती हुई उस बाई को साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार

का आहार-पानी (मे) मुझे (ण कप्पइ) नही कल्पता है ॥२८॥

संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणी य ।
असजमकरिं णच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥२९॥

अन्वयार्थ—यदि (पाणाणि) प्राणियो को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरी वनस्पति को (संमद्द-माणी) पैरो आदि से कुचलती हुई आहार-पानी देवे, तो (तारिसं) इस प्रकार (असजमकरिं) साधु के लिए अयतना करने वाली (णच्चा) जान कर साधु उसे (परिवज्जए) ग्रहण न करे ॥२९॥

साहट्टु णिक्खिवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाणि य ।
तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥३०॥
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाण-भोयणं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥३१॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (समणट्ठाए) साधु के लिए (सचित्त) सचित्त वस्तु को (साहट्टु) अचित्त वस्तु के साथ मिला कर (णिक्खिवित्ताण) सचित्त वस्तु पर आहारादि रख कर (य) और (संघट्टियाणि) सघट्टा कर के तथा (उदग) सचित्त पानी (सपणुल्लिया) हिला कर (ओगा-हइत्ता) पानी मे चल कर (चलइत्ता) रुके हुए पानी को नाली आदि से निकाल कर (पाणभोयण) आहार-पानी (आहरे) देवे, तो (दिंतिय) देती हुई उस बाई से

साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का आहार-पानी (मे) मुझे (ण कप्पइ) नही कल्पता है ॥३०-३१॥

पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥३२॥

अन्वयार्थ—(हत्थेण) ऐसा हाथ (दव्वीए) चम्मच (वा) अथवा (भायणेग) बरतन आदि जिनको (पुरेकम्मेण) साधु को आहारादि देने के लिए पहले धोये हो, उनसे (दिंतियं) आहारादि देती हुई बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (ण) नहीं (कप्पइ) कल्पता है ॥३२॥

एवं उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टियाउसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ॥३३॥
गेरुय वण्णिय सेडिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस कए य ।
उक्किट्ठमसंसट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥३४॥

अन्वयार्थ—(एवं) इसी प्रकार (उदउल्ले) सचित्त जल से गीले हाथो से (ससिणिद्धे) गीली रेखाओ सहित हाथो से (ससरक्खे) सचित्त रज से भरे हुए (मट्टिया) सचित्त मिट्टी (उसे) खार (हरियाले) हरताल (हिगुलए) हिंगलू (मणो-सिला) मैनसिल (अजणे) अंजन (लोणे) सचित्त नमक (गेरुय) गेरु (वणिण्य) पीली मिट्टी (सेडिय) श्वेत खड़िया-मिट्टी (सोरट्ठिय) फिटकड़ी (पिट्ठ) तत्काल पीसा हुआ आटा

(कुक्कुसकए) तत्काल कूटे हुए धान के तुप (य) और (उक्किट्ठं) बड़े फल अर्थात् कोहले, तरबूज आदि के टुकडे (चेव) इन उपरोक्त पदार्थों मे से किसी भी पदार्थ से (संसट्ठे) हाथ भरे हुए हो अथवा (असंसट्ठे) उपरोक्त पदार्थों से भरे हुए हाथ आदि को सचित्त पानी से धो कर, साधु को आहार-पानी दे, तो साधु न ले। (बोद्धव्वे) इस प्रकार की सारी बाते साधु को जाननी चाहिए ॥३३-३४॥

असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं ण इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे।३५।

अन्वयार्थ—(असंसट्ठेण) शाक आदि से अलिप्त (हत्थेण) हाथ से (दव्वीए) चम्मच से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाण) दिये जाने वाले आहारादि की मुनि (ण इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् उस आहार को साधु न लेवे, क्योकि (जहिं) जहाँ (पच्छाकम्म) साधु को आहारादि देने के बाद सचित्त जल से हाथ आदि को धोने की क्रिया (भवे) लगने की संभावना हो ॥३५॥

संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, ज तत्थेसणियं भवे॥३६॥

अन्वयार्थ—(संसट्ठेण) शाक आदि पदार्थों से भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (य) या (दव्वीए) चम्मच से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाण) आहारादि देवे

(ज) और वह आहारादि (एसणिय) निर्दोष (भवे) हो, तो (तत्थ) उस आहार को मुनि (पडिच्छिज्जा) ग्रहण करे ॥३६॥

भावार्थ—मुनि को जो वस्तु दी जा रही हो, उसी से यदि हाथ चम्मच आदि लिप्त हो, तो मुनि उस आहारादि को ग्रहण कर सकता है।

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं ण इच्छिज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) गृहस्थ के घर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो, उनमे से यदि (एगो) एक व्यक्ति (निमतए) निमत्रण करे अर्थात् आहारादि देना चाहे (तु) तो (दिज्जमाण) साधु दिये जाने वाले उस आहार की (ण इच्छिज्जा) इच्छा न करे, किंतु (से) उस निमत्रण न करने वाले व्यक्ति के (छद) अभिप्राय को (पडिलेहए) देखे ॥३७॥

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, दो वि तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३८॥

अन्वयार्थ—(तु) यदि (तत्थ) गृहस्थ के घर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो और (दो वि) वे दोनो (णिमतए) निमत्रण करे और (ज) यदि (दिज्जमाण) दिया जाने वाला (तत्थ) वह आहार (एसणिय) निर्दोष (भवे) हो, तो साधु (पडिच्छिज्जा) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३८।

गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविहं पाणभोयणं ।

भुंजमाण विवज्जिजज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥३९॥

अन्वयार्थ—(गुव्विणीए) गर्भवती स्त्री के लिए (उवण्णत्थ) बना कर रखे हुए (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार-पानी यदि वह (भुजमाण) खा रही हो, तो साधु (विवज्जिजज्जा) उस आहारादि को ग्रहण न करे, किन्तु (भुत्तसेस) उस गर्भवती के भोजन कर लेने के वाद वचा हुआ हो, तो (पडिच्छए) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३९॥

सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।

उट्ठिआ वा निसिइज्जा, निसण्णा वा पुणुट्ठए ॥४०॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४१॥

अन्वयार्थ—(सिया) यदि कदाचित् (कालमासिणी) निकट प्रसव वाली (गुव्विणी) गर्भवती स्त्री (उट्ठिआ वा) जो पहले से खडी हो, किन्तु (समणट्ठाए) साधु को आहारादि देने के लिए (निसीइज्जा) बैठे (वा) अथवा (निसन्ना) पहले से बैठी हुई वह साधु के लिए (पुण) फिर (उट्ठए) खडी हो (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार-पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिये (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (ण)

नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४०–४१॥

थणगं पिज्जमाणी, दारगं वा कुमारियं।
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाणभोयणं ॥४२॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(दारग) बालक को (वा) अथवा (कुमारिय) बालिका को (थणगं पिज्जमाणी) स्तन पान कराती हुई बाई (त) बच्चे को (णिक्खिवित्तु) नीचे रखे और बच्चा (रोयत) रोने लगे, उस समय (पाणभोयण) आहार-पानी (आहरे) देवे (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार-पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४२–४३॥

जं भवे भत्तपाणं तु, कप्पाकप्पम्मि संकियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४४॥

अन्वयार्थ—(ज) जो (भत्तपाण) आहार-पानी (कप्पाकप्पम्मि) कल्पनीय और अकल्पनीय की (सकिय) शंका से युक्त हो (तु) तो साधु (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार-पानी (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४४॥

दगवारेण-पिहियं, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥
तं च उब्भिदिया दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४६॥

अन्वयार्थ—(दगवारेण) सचित्त जल के घडे से (णीसाए) चक्की से (वा) अथवा (पीढएण) चौकी या वाजोट से (वा) अथवा (लोढेण) पत्थर से (वि) अथवा इसी प्रकार के (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार-पानी का वरतन (पिहिय) ढँका हुआ हो (वि) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम, लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छाँनण लगी हुई हो (त च) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिदिआ) खोल कर (दिज्जा) आप स्वय देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे, तो (तारिय) देने वाली उस वाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इसप्रकार का आहार-पानी (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४५-४६॥

असणं पाणगं वा वि खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पागडं इमं ॥४७॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।

जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥४९॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥
असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणीमट्ठा पगडं इमं ।५१।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥५२॥
असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं ।५३।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥५४॥

अन्वयार्थ—(ज) जिस (असण) आहार (पाणग) पानी (वावि) अथवा (खाइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय में साधु (जाणिज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा) किसी से सून ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुण्णट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओ के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार-पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ)

कल्पता है ।।४७–५४।।

उद्देसियं कीयगडं, पूइकम्मं च आहडं ।
अज्झोयर पामिच्चं, मीसजायं विवज्जए ।।५५।।

अन्वयार्थ—जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए वनाया हुआ हो, (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार मे आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए वनाये जाने वाले आहार मे साधु के निमित्त से और मिलाया हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो इन दूषणो से दूपित आहार को साधु (विविज्जए) ग्रहण न करे ।।५५।।

उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं ।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजए ।।५६।।

अन्वयार्थ—सन्देह हो जाने पर (सजए) साधु, दाता से (से) उस आहारादि की (उग्गम) उत्पत्ति के विषय में (पुच्छिज्जा) पूछे कि यह आहार (कस्सट्ठा) किसके लिए (वा) और (केण) किसने (कड) तय्यार किया है ? फिर (सुच्चा) गृहस्थ के मुख से उसकी उत्पत्ति सुन कर यदि वह (निस्सकिय) शका-रहित औद्देशिक आदि दोषों

से रहित हो (अ) और (सुद्ध) निर्दोष हो, तो साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे, अन्यथा नही ॥५६॥

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा ॥५७॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥५८॥

अन्वयार्थ--(असण पाणग वावि खाइमं तहा साइमं) अशन-पान-खादिम-स्वादिम चारों प्रकार का आहार (पुप्फेसु) फूलो से (बीएसू) बीजो से (वा) अथवा (हरिएसु) हरी लीलोती से (उम्मीस) मिश्रित (होज्ज) हो जाय तो ऐसा आहार-पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥५७-५८॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिंगपणगेसु वा ॥५९॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥६०॥

अन्वयाथ—(असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (उदगम्मि) सचित्त जल के ऊपर (वा अथवा (उत्तिंग पणगेसु) चीटियो कें बिल पर या लीलन-फूलन पर (निक्खित्त) रखा हुआ हो, तो ऐसा आहार-पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस

गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥५९-६०॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।

तेउम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए ॥६१॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥६२॥

अन्वयार्थ—(असण पाणग खाइम वावि तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (तेउम्मि) अग्नि के ऊपर (निक्खित्त) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) अथवा (त) अग्नि के साथ (सघट्टिया) सघट्टा हो रहा हो, ऐसा अकल्पनीय आहारादि (दए) दे, तो साधु ग्रहण न करे 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥६१-६२॥

एवं उस्सक्किया ओसक्किया।

उज्जालिया पज्जालिया निव्वाविया ॥

उस्सिंचिया निस्सिंचिया।

उवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥६४॥

अन्वयार्थ—(एव) जिस प्रकार अग्नि से सघट्टा हो रहा है ऐसे आहारादि को मुनि नहीं लेते, उसी प्रकार (उस्सक्किया) अग्नि मे ईंधन आगे सरका कर (ओसक्किया)

अधिक ईंधन को अग्नि से वाहर निकाल कर (उज्जालिया) बुझी हुई अग्नि को फूंक आदि से सुलगा कर (पज्जालिया) अग्नि को अधिक प्रज्वलित कर (निव्वालिया) अग्नि को बुझा कर (उस्सिचिया)अग्नि पर पकते हुए आहार मे से कुछ वाहर निकाल कर (निस्सिचिया) उफनते हुए दूध आदि मे पानी का छिडका दे कर (ओवत्तिया)अग्नि पर रहे हुए आहा-रादि को दूसरे वरतन मे निकाल कर(ओयारिया)अग्नि पर रहे हुए वरतन को नीचे उतार कर(दए) फिर आहार पानी दे, तो ऐसे अकल्पनीय आहार-पानी को साधु ग्रहण नही करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है।

भावार्थ—'साधु को आहारादि देने मे समय लगेगा' इतनी देर मे अग्नि ठडी न पड जाय अथवा अग्नि पर रहा हुआ आहारादि जल न जाय, ऐसा विचार कर यदि दाता अग्नि की उपरोक्त क्रिया कर के आहारादि दे, तो साधु उसे ग्रहण न करे।

हुज्ज कट्ठं सिलं वावि, इट्टालं वावि एगया।
ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥६५॥
ण तेण भिक्खू गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
गभीरं झुसिरं चेव, सव्विंदियसमाहिए ॥६६॥

अन्वयार्थ—(एगया) कभी वर्षा आदि के समय (सकम-ट्ठाए) आने-जाने के लिए (कट्ठ) काष्ठ (वावि) अथवा (सिल) शिला (वावि) अथवा (इट्टाल) ईंट का टुकड़ा

(ठविय) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) और (त) यदि वह (चलाचल) अस्थिर (होज्ज) हो, तो (तेण) उस मार्ग से तथा जो मार्ग (गभीर) गहरा होने से प्रकाश रहित हो और (झुसिर) जो मार्ग पोला हो, उस मार्ग से (सव्विदिय समाहिए) सभी इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (भिक्खू) साधु (ण) नही (गच्छेज्जा) जावे, क्योकि (तत्थ) वहाँ पर गमन करने से सर्वज्ञ प्रभु ने (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है ॥६५–६६॥

निस्सेणि फलग पीढ, उस्सवित्ताणमारुहे ।
मंचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए दावए ॥६७॥
दुरुहमाणी पवडिज्जा, हत्थ पाय व लूसए ।
पुढवीजीवे वि हिंसिज्जा, य तन्निस्सिया जगे ॥६८॥
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
तम्हा मालोहड भिक्खं, ण पडिगिण्हति सजया ।६९।

अन्वयार्थ—यदि (दावए) दान देने वाली स्त्री (समणट्ठाए) साधु के लिए (निस्सेणि) नि सरणी (फलग) पाटिया (पीढ) चौकी (मच) खाट (व) और (कील) कीले को (उस्सवित्ताण) खडा कर के (पासाय) दूसरी मजिल पर (आरुहे) चढे तो (दुरूहमाणी) इस प्रकार कष्ट से चढती हुई वह (पवडिज्जा) कदाचित् गिरपडे (व) और (हत्थ) उसका हाथ (पाय) पॉव आदि (लूसए) टूट जाय तथा (पुढवि-

जीवे) पृथ्वीकाय के जीवों की भी (हिंसिज्जा) हिंसा होगी (य) और (जे) जो (तन्निस्सिया) उस पृथ्वी की नेश्राय मे रहे हुए (जगे वि) त्रस जीवो की भी हिंसा होगी। (तम्हा) इस लिए (एयारिसे) ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के (महादोसे) महा दोषो को (जाणिऊण) जान कर (सजया) शुद्ध सयम का पालन करने वाले (महेसिणो) महर्षि लोग (मालोहड) ऊपर के मकान से निसरणी आदि उतार कर लाई हुई (भिक्ख) भिक्षा को (न पडिगिण्हति) ग्रहण नही करते ॥६७–६८–६९॥

कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥७०॥

अन्वयार्थ—(आम) कच्चा (कद) जमीकन्द (मूल) मूल—जड (पलव) तालफल (वा) अथवा (छिन्न) काटी हुई भी (आमग) सचित्त (सन्निर) बथुए आदि पत्तो की भाजी (तुबाग) घीया (च) और (सिंगबेर) अदरख आदि सभी प्रकार की सचित्त वनस्पति जिसे अग्नि आदि का शस्त्र न लगा हो, उसे साधु (परिवज्जए) छोड़ दे ॥७०॥

तहेव सत्तुचुण्णाइं, कोलचुण्णाइं आवणे।
सक्कुलिं फाणिअं पूअं अन्नं वावि तहाविहं ॥७१॥
विक्कायमाणं पसढं, रएण परिफासियं।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥७२॥

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य है, उसी प्रकार (आवणे) बाजार मे दूकान पर (विक्कायमाण) बेचने के लिए (पसढ) खुले रूप से रखे हुए (रएण) सचित्त रज से (परिफासिय) युक्त (सत्तुचुन्नाइ) जौ आदि के सत्तु का चूर्ण (कोलचुन्नाइ) बोरो का चूर्ण (सक्कुलि) तिल-पापड़ी (फाणिअ) गीला गुड (पूअ) मालपूवा तथा (तहाविह) इसी प्रकार के (अन्न वावि) और भी पदार्थ साधु को देने लगे, तो (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (मे) मुझे (तारिस) इस प्रकार का आहार(ण कप्पइ) नही कल्पता है ॥७१-७२॥

बहुअट्ठियं पुग्गलं, अणिमिसं वा बहुकंटयं ।
अत्थियं तिदुयं बिल्लं, उच्छुखंडं व सिंबलिं ॥७३॥
अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥७४॥

अन्वयार्थ— ‡ (बहुअट्ठिय) बहुत बीजो वाला फल—

---

‡ टिप्पणी—अट्ठिय—गुठली (आप्टे कृत सस्कृत इगलिश डिक्सनेरी और जैनागम शब्द सग्रह पृष्ठ ३६ । बहुअट्ठिय—बहुबीजकमिति (अवचूरिका जो विक्रम सवत् १६६५ से पहले की बनी हुई है, उसमे ‘ बहुअट्ठिय ’ शब्द का अर्थ ‘ बहुबीजक ’ ऐसा लिखा है) । निघण्टु कोष मे ‘ बहुबीजक ’ शब्द सीताफल के लिए आया है यथा—सीताफल गण्डमात्र वैदेहीवल्लम तथा । कृष्णबीन चाग्रिमाख्यमातृप्य बहुबीजक ॥

जैसे सीताफल (पुग्गल) पुद्‌ल वृक्ष का फल (अणिमिस) अनन्नास का फल (वहुकटय) बहुत कांटो वाला फल—जैसे पनस कटहल आदि । इस तरह व्याख्या करने से ये चार पद अलग-अलग हैं कही-कही (बहुअट्ठिय) और (वहुकटय) इन दो पदो को विशेपण रखा है, तव ऐसा अर्थ किया है— (वहुअट्ठिय) वहुत बीजो वाले फल का (पुग्गल) गिर—गूदा (वा) और (वहुकटय) बहुत काटो वाला (अणिमिस) अनन्नास का फल ।(अत्थिय)अस्थिक—अगित्थया वृक्ष का फल (तिदुय) तिन्दरुक टीवरु वृक्ष का फल (बिल्ल) बेल का फल (उच्छुखण्ड) इक्षुखण्ड—गडेरी (व) और (सिंवलि) सेमल का फल ये उपरोक्त नाम वाले फल (भोयणजाए) जिनमे खाने योग्य अश (अप्पे) थोडा (सिया) हो और (वहु उज्झिय-धम्मिय) फेक देने योग्य अश अधिक हो, ऐसे फल आदि (दिंतिय) देने वाली वाई, साधु से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥७३-७४॥

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वारधोयणं ।
संसेइमं चाउलोदगं, अहुणाधोयं विवज्जए ॥७५।

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार आहार के विषय में बतलाया गया है, उसी प्रकार (पाण) पानी के विषय मे आगे बताया जाता है (उच्चावय) उच्च अर्थात् अच्छे वर्णादि से युक्त दाख आदि का धोवन और अवच—सुन्दर वर्ग से रहित

मेथी केर आदि का धोवन (अदुवा) अथवा (वारधोयण) गुड के घडे का धोवन (ससेइम) आटे की कठौती का धोवन (चाउलोदग) चावलो का धोवन। ये सब धोवन यदि (अहुणा धोय) तुरन्त के धोये हुए हो, तो साधु (विवज्जए) उन्हे छोड देवे अर्थात् ग्रहण न करे ॥७५॥

ज जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा,ज च णिस्सकियं भवे ।७६।

अन्वयार्थ—(मईए) अपनी वुद्धि से (वा) अथवा (दसणेण) देखने से (पडिपुच्छिऊण) गृहस्थ से पूछ कर (वा) अथवा (सुच्चा) सुन कर (ज) जो धोवन (चिराधोय) वहुत काल का धोया हुआ है—ऐसा (जाणेज्ज) जाने (च) और (ज) जो (निस्सकिय) शका रहित (भवे) हो, तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है ॥७६॥

अजीवं परिणयं णच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह संकियं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

अन्वयार्थ—(अजीव) जल को जीव-रहित और (परिणय) शस्त्र-परिणत (णच्चा) जान कर (सजए) साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे (अह) यदि वह (सकिय) इससे प्यास वुझेगी या नही, इस प्रकार की शका से युक्त (भविज्जा) हो, तो उसे (आसाइत्ताण) चख कर (रोयए) निर्णय करे ॥७७॥

थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चबिलं पूयं,नालं तण्हं विणित्तए ॥७८॥

अन्वयार्थ—धोवन आदि को चख कर निर्णय करने के लिए साधु दाता से कहे कि—(आसायणट्ठाए) चखने के लिये (थोव) थोडा-सा धोवन (मे) मेरे (हत्थगम्मि) हाथ मे (दलाहि) दो।—क्योकि (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टा (पूय) बिगडा हुआ और (तिण्ह) प्यास को (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ धोवन (मे, मेरे लिए (मा) उपयोगी नही होगा ॥७८॥

त च अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्ह विणित्तए।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिस ॥७९॥

अन्वयार्थ—(त) उस (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टे (पूय) बिगडे हुए (च) और (तिण्ह) प्यास (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ ऐसा धोवन (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का धोवन (मे) मुझे (ण) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥७९॥

तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं।
त अप्पणा ण पिवे, नो वि अण्णस्स दावए ॥८०॥

अन्वयार्थ—यदि कदाचित् (अकामेण) विना इच्छा से (च) अथवा (विमणेण) विना मन से—ध्यान न

रहने के कारण (पडिच्छि होज्ज) उपरोक्त प्रकार का धोवन ग्रहण कर लिया हो तो साधु (त) उसे (ण) न तो (अप्पणा) आप स्वय (पिवे) पिवे और (नोवि) न (अन्नस्स) दूसरो को (दावए) पिलावे ॥८०॥

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८१॥

अन्वयार्थ—(एगत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जा कर (अचित्त) एकेन्द्रियादि प्राणी-रहित स्थान को (पडिलेहिया) पूज कर उस धोवन को (जय) यतना से (परिट्ठविज्जा) परठ दे । (परिट्ठप्प) परिठव कर तीन बार वोसिरे वोसिरे कहे फिर लौट कर (पडिक्कमे) इरिया-वहिया का प्रतिक्रमण करे ॥८१॥

सिया य गोयरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभोत्तुअ ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं ॥८२॥
अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए ॥८३॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्गओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मेहावी) समाचारी का जानकार बुद्धिमान् (सजए) साधु (सिया) यदि कदाचित् ग्लान अवस्था के कारण अथवा अन्य किसी कारण से (परिभोत्तुअ) वहीं पर आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो वहाँ (फासुय)

जीव रहित (कुट्ठग) कोठे आदि की (पहिलेहित्ताण) पडिलेहण कर के (य) और (अणुन्नवित्तु) गृहस्थ की आज्ञा माँग कर (तत्थ) वहाँ (भित्तिमूल) दीवार की आड मे (वा) अथवा (पडिच्छन्नम्मि) ऊपर से छाये हुए स्थान मे (हत्थग) पूंजनी से हाथ आदि (सपमज्जित्ता) पूंज कर (सवुडे) उपयोग पूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे ॥८२-८३॥

तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठियं कंटओ सिया ।
तणकट्ठसक्करं वा वि,अण्णं वा वि तहाविहं ॥८४॥

तं उक्खिवित्तु ण निक्खिवे,आसएण ण छड्डुए ।
हत्थेण तं गहेऊणं, एगंतमवक्कमे ॥८५॥

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८६॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) वहाँ कोठे आदि मे (भुजमाणस्स) आहार करते हुए (से) साधु के आहार मे (सिया) यदि—कदाचित् (अट्ठियं) बीज-गूठली (कटओ) काटा (तण) तिनका (कट्ठ) काठ का टुकडा (वा वि) अथवा (सक्कर) छोटा ककर तथा (अन्न वा वि) और भी (तहाविह) इसी प्रकार का कोई पदार्थ आ जाय तो (त) उसे (उक्खिवित्तु) निकाल कर (ण णिक्खिवे) इधर-उधर न फेके तथा (आसएण) मुख से भी (ण छड्डुए) न फेके न थूके किन्तु (हत्थेण) हाथ से (त) उसे (गहेऊण) ग्रहण कर के (एगत) एकान्त

स्थान मे (अवक्कमे) जावे और (एगत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जा कर (अचित्त) जीव रहित अचित्त स्थान की (पडिलेहिया) पडिलेहणा कर के (जय) यतना पूर्वक उसे (परिट्ठविज्जा) परठ दे और (परिट्ठप्प) परिठव कर के (पडिक्कमे) लौट कर प्रतिक्रमण करे अर्थात् इरियावहिया का ध्यान करे ॥८४-८५-८६॥

सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जामागम्म भुत्तुअं ।
सपिंडपायमागम्म, उंडुअं पडिलेहिया ॥८७॥
विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी ।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥८८॥

अन्वयार्थ—(सिया) जो (भिक्खू) साधु (सिज्ज) अपने स्थान मे ही (आगम्म) आ कर (भुत्तुअ) आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो (सपिंडपाय) वह उस शुद्ध भिक्षा को ले कर (आगम्म) अपने स्थान मे आवे (य) और (विणएण) विनय पूर्वक (पविसित्ता) स्थानक मे प्रवेश कर के (उडुअ) भोजन करने के स्थान को (पडिलेहिया) अच्छी तरह देखे (य) और (गुरुणो) गुरु के (सगासे) पास (आगओ) आ कर (मुणी) मुनि (इरियावहिय) इरियावहिया का पाठ (अयाय) पढ कर (पडिकक्मे) कायोत्सर्ग करे ॥८७-८७॥

आभोइत्ताण नीसेसं, अइयारं जहक्कमं ।
गमणागमणे चेव, भत्तपाणे य संजए ॥८९॥

उज्जुप्पण्णो अणुव्विग्गो,अवक्खित्तेण चेयसा ।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहियं भवे ॥९०॥

अन्वयार्थ—(सजए)कायोत्सर्ग करते समय मुनि (गमणागमणे) जाने-आने मे (चेव) और (भत्तपाणे) आहार पानी के ग्रहण करने मे लगे हुए (नीसेस) सभी (अइयार) अतिचारो को (य) तथा (ज) जो आहार पानी (जहा) जिस प्रकार से (गहिय) ग्रहण किया (भवे) हो उसे (जहक्कम) यथाक्रम से (आभोइत्ताण) उपयोगपूर्वक चिन्तवन कर के (उज्जुप्पन्नो) सरल बुद्धि वाला (अणुव्विग्गो) उद्वेग रहित वह मुनि (अव्वक्खित्तेण) एकाग्र (चेयसा) चित्त से (गुरुसगासे) गुरु के पास (आलोए) आलोचना करे ॥८९-९०॥

ण सम्ममालोइयं हुज्जा,पुव्वि पच्छा व जं कडं ।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चितए इमं ॥९१॥

अन्वयार्थ—(ज) जो अतिचार (पुव्वि) पहले (व) तथा (पच्छा) पीछे (कड) लगा है उसकी (सम्म) अच्छी तरह से क्रमपूर्वक (आलोइय) आलोचना (ण हुज्जा) न हुई हो तो (तस्स) उस अतिचार की (पुणो) फिर से (पडिक्कमे) आलोचना करे और (वोसट्ठो) कायोत्सर्ग मे रहा हुआ साधु (इम)आगे की गाथा मे कहे गये अर्थ का(चितए) चिन्तन करे ॥९१॥

भावार्थ—जो अतिचार पहले लगा हो उसकी पहले आलो-

चना करनी चाहिए और पीछे लगे हुए अतिचार की पीछे आलोचना करनी चाहिए। किन्तु पहले की पीछे और पीछे की पहले आलोचना न करनी चाहिए।

अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण-देसिया।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥९२॥

अन्वयार्थ—कायोत्सर्ग मे स्थित मुनि इस प्रकार विचार करे कि (अहो) अहो! (जिणेहि) जिनेश्वर देवो ने (मोक्ख-साहणहेउस्स) मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत (साहुदेहस्स) साधु के शरीर का (धारणा) निर्वाह करने के लिए (साहूण) साधुओ के लिए कैसी (असावज्जा) निर्दोष (वित्ती) भिक्षा-वृत्ति (देसिया) बताई है ॥९२॥

णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं।
सज्झायं पट्ठवित्ताणं, वीसमेज्ज खणं मुणी ॥९३॥

—**अन्वयार्थ**—(मुणी) मुनि (णमुक्कारेण) 'णमोअरि-हंताण' पद का उच्चारण कर के (पारित्ता) कायोत्सर्ग पारे तथा (जिणसथव) 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि से तीर्थंकर भगवान् की स्तुति (करित्ता) कर के तथा (सज्झाय) कुछ स्वाध्याय (पट्ठवित्ताण) कर के (खण) कुछ देर के लिए (वीसमेज्ज) विश्राम करे ॥९३॥

वीसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ।
जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥९४॥

अन्वयार्थ—(लाभमट्ठिओ) निर्जरा रूपी लाभ का इच्छुक साधु (वीसमतो) विश्राम करता हुआ (हियमट्ठ) अपने कल्याण के लिए (इम) इस प्रकार (चिंते) चिन्तन करे कि (जइ) यदि कोई (साहू) साधु (मे) मुझ पर (अणुग्गह) अनुग्रह (कुज्जा) करे अर्थात् मेरे आहार मे से कुछ आहार ग्रहण करे तो (तारिओ) मैं इस ससार-समुद्र से पार (हुज्जामि) हो जाऊँ ॥९५॥

साहवो तो चिअत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं ।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा,तेहिं सद्धि तु भुंजए ।९५।

अन्वयार्थ—(इस प्रकार विचार कर वह मुनि गुरु-आज्ञा मिलने पर (साहवो)सब साधुओ को (चिअतेण) प्रीति पूर्वक (जहक्कम) यथाक्रम से अर्थात् सब से पहले बड़े साधु को तत्पश्चात् छोटे को इस प्रकार क्रम से (निमतिज्ज) निमत्रण करे, (जइ) यदि (तत्थ) उनमे से (केइ) कोई साधु (इच्छिज्जा) आहार लेना चाहे तो उन्हे दे कर (तेहिं सद्धि तु) उनके साथ (भुजए) आहार करे ॥९५॥

अह कोइ ण इच्छिज्जा, तओ भुंजिज्ज एक्कओ
आलोए भायणे साहू, जयं अपरिसाडियं ॥९६॥

अन्वयार्थ—(अह) इस प्रकार निमत्रण करने पर भी

यदि (कोइ) कोई साधु (ण इच्छिज्जा) आहार लेना न चाहे (तओ) तो (साहू) वह साधु (एक्कओ) अकेला ही द्रव्य से स्वय, भाव से राग-द्वेष रहित (आलोए) चौडे मुख वाले प्रकाश युक्त (भायणे) पात्र मे (अपरिसाडिय) नीचे नही गिरता हुआ (जय) यतनापूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे ॥९६॥

तित्तगं व कडुअं व कसायं,अंबिल व महुरं लवणं वा।
एयलद्धमण्णट्ठपउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए ॥९७॥

अन्वयार्थ—(अन्नत्थ पउत्त) गृहस्थ के द्वारा अपने लिये बनाया हुआ (एयलद्ध) शास्त्रोक्त विधि से मिला हुआ आहार यदि (तित्तग) तीखा (व) अथवा (कडुअ) कडुआ (व) अथवा (कसाय) कसैला (व) अथवा (अबिल(खट्टा (वा) अथवा (महुर) मीठा अथवा (लवण) नमकीन हो चाहे कैसा भी हो, किन्तु (सजए) साधु उस आहार को (महुघय व) घी-शक्कर के समान प्रसन्नता पूर्वक (भुजिज्ज) खावे ॥९७॥

अरसं विरसं वा वि, सूइयं वा असूइयं।
उल्लं वा जइ वा सुक्कं, मंथुकुम्मास भोयणं।९८।
उप्पण्णं नाइहीलिज्जा, अप्पं वा बहुफासुयं।
मुहालद्धं मुहाजीवी, भुंजिज्जा दोसवज्जियं ॥९९॥

अन्वयार्थ—(उप्पण्ण) शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ

आहार (जंइ) यदि (अरसं) रस रहित हो (वावि) अथवा (विरस) विरस–पुराने चावल एव पुराने धान की बनी हुई रोटी आदि हो (सूइय) बघारा—छोका हुआ शाक हो (वा) अथवा (असूइय) बघार रहित हो (उल्ल) गीला हो (वा) अथवा (सुक्क) शुष्क-भुने हुए चने आदि हो (वा) अथवा (मथु) बोर का चून या कुलथी का आहार हो अथवा (कुम्मास भोयण) उडद के बाकले हो (अप्प) सरस आहार थोडा हो (व) अथवा (बहु) नीरस आहार बहुत हो अर्थात् चाहे कैसा भी आहार हो, साधु (नाइ हीलिज्जा) उस आहार की अथवा दाता की अवहेलना—निन्दा न करे किन्तु (मुहाजीवी) नि स्पृहभाव से केवल सयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिये भिक्षा लेने वाला मुनि (मुहालद्ध) दाता द्वारा नि स्वार्थभाव से दिये हुए (फासुय) उस प्रासुक एव निर्दोष आहार को (दोसवज्जिय) संयोजनादि दोषो को टाल कर (भुजिज्जा) समभाव पूर्वक खावे ॥९८–९९॥

दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं ।१००।त्तिबेमि

अन्वयार्थ— (मुहादाई) प्रत्युपकार की आशा न रख कर नि स्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले दाता (उ-हु) निश्चय ही (दुल्लहा) दुर्लभ हैं और इसी तरह (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव नि स्पृह भाव से शुद्ध भिक्षा ले कर सयम-यात्रा का निर्वाह

करने वाले भिक्षु (वि) भी (दुल्लहा) दुर्लभ है। (मुहादाई) निःस्वार्थ भाव से दान देने वाले दाता और (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव निःस्पृह भाव से दान लेने वाले भिक्षु (दो वि) दोनो ही (सुग्गइ) सुगति मे (गच्छति) जाते है ॥१००॥ (त्तिबेमि) पूर्ववत्।

॥ पाँचवे अध्ययन का पहला उद्देशक समाप्त ॥
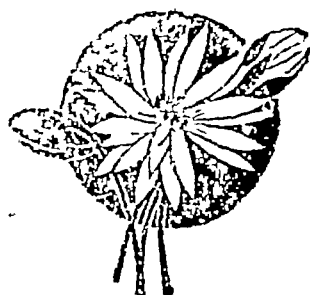
दूसरा उद्देशक

पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेवमायाए संजए ।
दुगधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे ण छड्डुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (पडिग्गह) पात्र में लगे हुए (लेवमायए) लेप मात्र को (वा) यदि वह (दुगध) अमनोज्ञ गध वाला हो (वा) अथवा (सुगध) सुरभि गन्ध वाला हो (सव्व) उस सब को (सलिहित्ताण) अगुली से पोछ कर (भुजे) खा जाय किन्तु (ण छड्डुए) कुछ भी न छोडे ॥१॥

सेज्जा निसीहियाए, समावण्णो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेण ण संथरे ॥२॥
तओ कारणमुप्पण्णे, भत्तपाणं गवेसए ।
विहिणा पुव्वउत्तेण, इमेणं उत्तरेण य ॥३॥

अन्वयार्थ—(सेज्जा) उपाश्रय मे (य) अथवा (निसीहियाए) आहार करने के स्थान मे (समावण्णो) बैठ कर मुनि (गोयरे) गोचरी से मिले हुए आहार को (भुच्चाण) यतना पूर्वक भोगवे (जइ) यदि कदाचित् (तेण) वह आहार (अयावयट्ठा) अपर्याप्त हो, आवश्यकता से कम हो और उस आहार से (ण सथरे) न सरे अथवा (कारण) अन्य कोई कारण (उप्पण्णे) उत्पन्न हो जाय (तओ) तो साधु (पुव्वउत्तेण) पहले उद्देशे मे कही हुई (य) तथा (इमेण) इस (उत्तरेण)

दूसरे उद्देशे मे कही जाने वाली (विहिणा) विधि से (भत्त-पाण) आहार-पानी की (गवेसए) फिर गवेषणा करे ॥२-३॥

भावार्थ—गोचरी जा कर लाया हुआ आहार यदि पर्याप्त न हो तो मुनि विधिपूर्वक आहार लाने के लिये दूसरी बार भी जा सकता है।

कालेण णिक्खमे भिक्खू,कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता,काले कालं समायरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) साधु (कालेण) जिस गाँव मे जो समय भिक्षा का हो, उसी समय मे (णिक्खमे) भिक्षा के लिए जावे (य) और (कालेण) भिक्षा-काल समाप्त होने पर (पडिक्कमे) लौट आवे (च) और (अकाल) अकाल को (विवज्जित्ता) छोड कर (काले) उचित काल मे (काल) उस काल के योग्य (समायरे) आचरण करे अर्थात् गोचर-काल मे गोचरी करे और स्वाध्याय के काल मे स्वाध्याय करे ॥४॥

उत्थानिका—अकाल मे भिक्षा के लिए जाने से जो दोष होते है उनको बताने के लिए टीकाकार ने एक दृष्टान्त की कल्पना की है। एक मुनि अकाल मे भिक्षा के लिये गये। भिक्षा न मिलने से वे लौट रहे थे। उन्हे म्लानमुख देख कर एक काल चारी साधु उनसे पूछता है कि हे मुने! आपको भिक्षा मिली या नही ? तब वह कहता है कि स्थण्डिल एवं

सुनसान वन के समान कंजूसो के इस गाँव मे भिक्षा कहाँ पड़ी है ? इस पर वह कालचारी साधु कहता है—

अकाले चरसि भिक्खू, कालं ण पडिलेहसि ।
अप्पाणं च किलामेसि, संणिवेसं च गरिहसि ॥५॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) हे भिक्षु ! आप (अकाले) असमय मे (चरसि) गोचरी के लिए जाते हो (च) और (काल) गोचरी के काल का (ण पडिलेहसि) ख्याल नही रखते हो, अतः (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (किलामेसि) खेदित करते हो (च) और (सणिवेस) गांव की भी (गरिहसि) निन्दा करते हो ॥५॥

सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं ।
अलाभु त्ति ण सोइज्जा, तवोत्ति अहियासए ॥६॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) साधु (काले) भिक्षा का समय (सइ) होने पर (चरे) गोचरी के लिए जावे और (पुरिसकारिय) भिक्षा के लिए घूमने रूप पुरुषार्थ (कुज्जा) करे (अलाभुत्ति) यदि भिक्षा का लाभ न हो तो फिर (न सोइज्जा) शोक न करे किन्तु (तवोत्ति) आज सहज ही मे मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप होगा, ऐसा विचार कर (अहियासए) क्षुधा-परीषह को समभाव पूर्वक सहन करे ॥६॥

तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया ।
तं उज्जुयं ण गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥७॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (उच्चावया) उच्च जाति के हसादि पक्षी और नीच जाति के कौए आदि (पाणा) प्राणी यदि (भत्तट्ठाए) चुगा-पानी के लिए किसी स्थान पर (समागया) इकट्ठे हुए हो, तो साधु (त उज्जुय) उन प्राणियो के सामने (ण गच्छिज्जा) न जावे किन्तु (जयमेव) यतनापूर्वक अन्य मार्ग से (परक्कमे) जावे जिससे उन प्राणियो के चुगा-पानी मे अन्तराय न पडे ॥७॥

गोयरग्गपविट्ठो य, ण णिसीइज्ज कत्थई ।
कहं च पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए ॥८॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्गपविट्ठो य) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) साधु (कत्थई) कही पर भी (ण) न (निसीइज्ज) बैठे (च) और (चिट्ठित्ताण व) खडा रह कर भी (कह) कथा-वार्ता (ण) न (पवधिज्जा) कहे ॥८॥

अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वा वि संजए ।
अवलबिया ण चिट्ठिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ॥९॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) छ काय के जीवो की रक्षा करने वाला सयती (मुणी) मुनि (अग्गल) आगल—भोगल को (फलिह) फलक अर्थात् दोनो किवाडो को रोक रखने वाले काठ—होडा को (दार) दरवाजे को (वा वि) अथवा (कवाड) किवाड को (अवलविया) पकड कर या सहारा ले कर (ण चिट्ठिज्जा)

खडा न रहे, क्योकि इस प्रकार खडे रहने से आत्मविराधना एव सयम-विराधना होने की सम्भावना रहती है ॥९॥

समणं माहणं वा वि, किविणं वा वणीमगं ।
उवसंकमंत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥१०॥
तमइक्कमित्तु ण पविसे, ण चिट्ठे चक्खुगोयरे ।
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए ॥११॥

अन्वयार्थ—(समण) श्रमण (वा वि) अथवा (माहण) ब्राह्मण (किविण) कृपण (वा) अथवा (वणीमग) भिखारी आदि (भत्तट्ठापाणट्ठाए) अन्न पानी के लिए (उवसकमत) गृहस्थ के द्वार पर खडे हो तो (सजए) सयमी साधु (त) उनको अइक्कमित्तु) लाँघ कर (ण पविसे) गृहस्थ के घर मे न जावे और (चक्खुगोयरे) जहाँ पर उस दाता की और भिखारियो की दृष्टि पडती हो वहाँ भी (ण चिट्ठे) खडा न रहे, किंतु (सजए) वह सयती साधु (एगत) एकान्त स्थान मे जहाँ पर उनकी दृष्टि न पडती हो (तत्थ) वहाँ (अवक्कमित्ता) जा कर (चिट्ठिज्ज) यतनापूर्वक खडा रहे ॥१०-११॥

वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा ।
अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा ।१२।

अन्वयार्थ—उन्हे उल्लघन कर के जाने से या उनके सामने खडे रहने से (सिया) कदाचित् (तस्स) उस (वणीमगस्स) याचक को (वा) अथवा (दायगस्स) दाता को (वा) अथवा (उभयस्स) दाता और याचक—दोनो को (अप्पत्तिय) अप्रीति-

द्वेष उत्पन्न होगा (वा) और (पवयणस्स) प्रवचन—जिन-शासन की (लहुत्त) लघुता (हुज्जा) होगी, अत उन्हे उल्लंघन कर के गृहस्थ के घर मे जाना साधु का कल्प नही है ॥

पडिसेहिए व दिण्णे वा, तओ तम्मि णियत्तिए ।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥१३॥

अन्वयार्थ—(दिण्णे) उन याचको को भिक्षा देने पर (वा) अथवा (पडिसेहिए) दाता के निषेध कर देने पर (तम्मि) जब वे याचक (तओ) गृहस्थ के घर से (णियत्तिए) लौट कर चले जायँ तब (सजए) साधु (भत्तट्ठापाणट्ठाए व) आहार-पानी के लिए वहाँ (उवसकमिज्ज) जावे ॥१३॥

उप्पलं पउमं वा वि, कुमुय वा मगदंतियं ।
अण्णं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च सलुंचिया दए ॥१४॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥१५॥
उप्पलं पउमं वा वि, कुमुयं वा मगदंतिय ।
अण्णं वा पुप्फ-सच्चित्तं, तं च संमद्दिया दए ।१६।
त भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतिय पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(उप्पल) नीलोत्पल—नीला कमल (वा वि) अथवा (पउम) पद्म—लाल कमल (कुमुय) चन्द्रविकासी सफेद कमल (वा) अथवा (मगदतिय) मालती—मोगरे का फूल

(वा) अथवा (अण्ण) इसी प्रकार का दूसरा कोई (पुप्फ) फूल (सच्चित्त। जो सचित्त हो (त) उसको (सलुचिया) छेदन भेदन कर के (वा) अथवा (समद्दिया) पैरो आदि से कुचल कर अथवा संघट्टा कर के (दए) आहार पानी दे तो साधु दाता से कहे कि ऐसा आहार पानी मुझे नही कल्पता है। 'त भवे' का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥१४-१५-१६-१७॥

सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलणालियं ।
मुणालियं सासवनालिय, उच्छुखंडं अणिव्वुडं ।१८।
तरुणगं वा पवाल, रुक्खस्स तणगस्स वा ।
अण्णस्स वा वि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ।१९।

अन्वयार्थ—(सालुय) कमल का मूल (विरालिय) पलास का कन्द (कुमुय) चन्द्र-विकासी श्वेत कमल (उप्पलनालियं) कमल-नाल (मुणालिय) कमल-तन्तु (सासवणालियं) सरसों की भाजी या नाल (वा) अथवा (उच्छुखड) ईख के टुकडे-गडेरी। ये सब पदार्थ यदि (अणिव्वुड) शस्त्र-परिणत न हो तो साधु ग्रहण न करे तथा (रुक्खस्स) वृक्ष के (वा) अथवा (तणगस्स) तृण के (अण्णस्स वा वि) अथवा इसी प्रकार की दूसरी किसी भी (हरियस्स) हरितकाय के (तरुणग) कच्चे पत्ते (वा) अथवा (पवाल) कच्ची कोपल आदि (आमग) जो सचित्त हो, तो उन्हे (परिवज्जए) साधु ग्रहण न करे।१८-१९।

तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥२०॥

अन्वयार्थ—(तरुणिय) जिसके वीज नही पके है ऐसी (छिवाडि) मूंग आदि की फली जो (आमिय) कच्ची हो (वा) अथवा (सइ) एक वार की (भज्जिय) भुनी हुई हो, जिसमे पक्वापक्व–मिश्र की शका हो, ऐमी फली यदि कोई साधु को देने लगे तो (दितिय) देने वाली वाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का पदार्थ (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥२०॥

तहा कोलमणुस्सिसण्णं, वेलुय कासवणालियं ।
तिल-पप्पडगं णीमं, आमगं परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ—(तहा) इमी प्रकार (अणुस्सिन्न) अग्नि आदि से विना पकाया हुआ (कोल) कोल–वोरकूट (वेलुय) वश-करेला (कासवनालिय) श्रीपर्णी का फल (तिलपप्पडग) तिल-पापडी (णीम) नीम का फल–नीवोली, ये सव यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे ॥२१॥

तहेव चाउलं पिट्ठं, वियडं वा तत्तऽणिव्वुडं ।
तिलपट्ठ पूइपिण्णागं, आमगं परिवज्जए ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (चाउल) चावलो का तथा गेहुँ आदि का (पिट्ठ) तत्काल का पीसा हुआ आटा (वा) अथवा (तत्तऽणिव्वुड) पहले गरम किया हुआ किन्तु मर्यादा उपरात हो जाने के कारण ठण्डा हो कर जो सचित्त हो गया है अथवा मिश्रित एव अपक्व (वियड) जल (तिलपिट्ठ) तिलकूटा (पूइपिण्णाग) सरसो की खल, ये सव यदि (आमग)

सचित्त हो तो (परिवज्जए) इन्हे साधु ग्रहण न करे ॥२२॥

कविट्ठं माउलिंगं च, मूलग मूलगत्तियं ।
आमं असत्थपरिणयं, मणसा वि ण पत्थए ॥२३॥

अन्वयार्थ—(कविट्ठ) कविठ फल (माउलिग) मातुलिग—बिजौरा (मूलग) मूला (च) और (मूलगत्तिय) मूले के टुकडे—ये सब यदि (आम) सचित्त हो (असत्थपरिणय) सम्यक् प्रकार से शस्त्र से परिणत न हुए हो, तो साधु इन पदार्थों की (मणसा वि) मन से भी (ण पत्थए) इच्छा न करे ॥२३॥

तहेव फलमंथूणि, बीयमंथूणि जाणिया ।
बिहेलगं पियालं च, आमगं परिवज्जए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (फलमथूणि) बोर आदि फलो का चूर्ण (बीयमथूणि) वीजो का चूर्ण (विहेलग) वहेडा (च) और (पियाल) रायण का फल, इन सब को (आमग) सचित्त (जाणिया) जान कर साधु इन्हे (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे ॥२४॥

समुयाणं चरे भिक्खू, कुलमुच्चावयं सया ।
णीयं कुलमइक्कम्म, ऊसढ णाभिधारए ॥२५॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) साधु (सया) हमेशा (उच्चावय) ऊच और नीच अर्थात् धनवान् और गरीब (कुल) कुल—घर मे (समुयाण) सामुदानिक रूप से (चरे) गोचरी जावे किन्तु

(णीय) गरीब (कुल) कुल—घर को (अइक्कम्म) लाघ कर ऊसढ) धनवान् के घर (णाभिधारए) न जावे ॥२५॥

भावार्थ—श्रीमन्त हो या गरीब हो, साधु उन दोनो को समान दृष्टि से देखे और समान भाव से प्रतीति वाले कुलो मे गोचरी के लिए जावे।

अदीणो वित्तिमेसिज्जा, ण वीसीइज्ज पंडिए।
अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायण्णे एसणारए ॥२६॥

अन्वयार्थ—(मायण्णे) आहार पानी की मात्रा को जानने वाला (एसणारए) आहार की शुद्धि मे तत्पर (पडिए) बुद्धिमान् साधु (भोयणम्मि) भोजन मे (अमुच्छिओ) गृद्धिभाव न रखता हुआ तथा (अदीणो) दीनता न दिखलाता हुआ (वित्ति) गोचरी की (एसिज्जा) गवेषणा करे, यदि ऐसा करते हुए कदाचित् भिक्षा न मिले तो (ण विसीइज्ज) खेद नही करे ॥२६॥

वहु परघरे अत्थि, विविहं खाइमसाइमं।
ण तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो ण वा ॥२७॥

अन्वयार्थ—(परघरे) गृहस्थ के घर मे (खाइम) खादिम —वादाम पिस्ता आदि मेवा और (साइम) स्वादिम—लौंग इलायची आदि (विविह) अनेक प्रकार के (वहु) वहुत-से (अत्थि) पदार्थ होते हैं यदि गृहस्थ साधु को वे पदार्थ न देवे तो (पडिओ) बुद्धिमान् साधु (तत्थ) उस गृहस्थ पर (न कुप्पे) क्रोध न करे, परन्तु ऐसा विचार करे कि (परो) यह गृहस्थ है

(इच्छा) इसकी इच्छा हो तो (दिज्ज) देवे (वा) अथवा इच्छा न हो तो (ण) न देवे ॥२७॥

सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदितस्स ण कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ।२८।

अन्वयार्थ—(सयण) शय्या (आसण) आसन (वत्थ) वस्त्र (वा) अथवा (भत्त) आहार (व) और (पाण) पानी जो (पच्चक्खे वि य) सामने रखे हुए (दीसओ) दिखाई देते हो, फिर भी गृहस्थ (अदितस्स) यदि उन पदार्थों को न दे, तो भी (सजए) साधु (ण कुप्पिज्जा) उस पर क्रोध न करे, क्योकि दे या न दे गृहस्थ की इच्छा है।

इत्थियं पुरिसं वा वि, डहरं वा महल्लगं।
वंदमाणं ण जाइज्जा, णो य णं फरुसं वए ॥२९॥

अन्वयार्थ—(वदमाण) वन्दना करते समय (इत्थिय) किसी भी स्त्री (वा वि) अथवा (पुरिस) पुरुष (डहर) बालक (वा) अथवा (महल्लग) वृद्ध से (ण जाइज्जा) साधु किसी प्रकार की याचना न करे (य ण) तथा आहार न देने वाले गृहस्थ को (फरुस) कठोर वचन भी (णो वए) न कहे।

जे ण वंदे ण से कुप्पे, वंदिओ ण समुक्कसे।
एवमण्णेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ॥३०॥

अन्वयार्थ—(जे) जो गृहस्थ (ण वदे) साधु को वन्दना नही करे (से) उस पर (ण कुप्पे) क्रोध न करे और (वदिओ)

राजा-महाराजा आदि वन्दना करते हो तो (ण समुक्कसे) अभि॰मान भी नही करे कि देखो ! मै कैसा माननीय हूँ—जो राजा महाराजा भी मेरे चरणो मे गिरते हैं। (एव) इम प्रकार (अण्णेसमाणस्स) भगवान् की आज्ञा के आराधक मुनि का (सामण्ण) साधुत्व—चारित्र (अणुचिट्ठइ) निर्मल रहता है ॥

सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ ।
मा मेय दाइयं सतं, दट्ठूणं सयमायए ॥३१॥

अन्वयार्थ—(सिया) कदाचित् (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई रसलोलुपी साधु (लद्धु) सरस आहार मिलने पर (लोभेण) खाने के लोभ से (विणिगूहइ) उसे छिपा लेवे—नीरस वस्तु को ऊपर रख कर सरस वस्तु को नीचे दवा देवे क्योकि (माम) यदि मै (एय) इस आहार को (दाइय सत) गुरु महाराज को दिखलाऊगा तो (दट्ठुण) इस सरस आहार को देख कर (सयमायए) कदाचित् वे स्वय सव का सव ले लेवे—मुझे कुछ भी न दें ॥३१॥

अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहुं पाव पकुव्वइ ।
दुत्तोसओ य से होइ, णिव्वाणं च न गच्छइ ॥३२॥

अन्वयार्थ—(अत्तट्ठागुरुओ) केवल अपने पेट भरने मे लगा हुआ (लुद्धो) रस-लोलुपी (सो) साधु (वहु) वहुत (पाव) पाप (पकुव्वइ) उपार्जन करता है (य) और सदा (दुत्तोसओ) असन्तोपी (होइ) वना रहता है (च) ऐसा साधु (णिव्वाण) मोक्ष (ण गच्छइ) प्राप्त नही कर सकता ॥३२॥

सिया एगइओ लद्धुं, विविहं पाणभोयणं ।
भद्दगं भद्दगं भोच्चा, विवण्णं विरसमाहरे ॥३३॥

अन्वयार्थ—(एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रस-लोलुपी साधु (सिया) कदाचित् ऐसा भी करे कि (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार-पानी (लद्धु) प्राप्त कर के उसमे से (भद्दग भद्दग) अच्छे-अच्छे सरस आहार को (भोच्चा) वही कही पर एकान्त स्थान में खा कर बाकी बचा हुआ (विवण्ण) विवर्ण और (विरस) नीरस आहार (आहरे) अपने स्थान पर लावे ॥३३॥

जाणंतु ता इमे समणा, आययट्ठी अय मुणी ।
संतुट्ठो सेवए पंत, लूहवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

अन्वयार्थ—(ता) अच्छे-अच्छे सरस आहार को मार्ग में ही खा जाने वाला रसलोलुपी साधु ऐसा विचार करता है कि (इमे) स्थानक मे रहे हुए (समणा) साधु इस रूखे-सूखे आहार को देख कर (जाणतु) ऐसा जानेगे कि (अय) यह (मुणी) मुनि (सतुट्ठो) बडा सन्तोषी और (आययट्ठी) आत्मार्थी है, इसीलिए (लूहवित्ती) सरस आहार की आकाक्षा नही करता किन्तु (सुतोसओ) जैसा आहार मिलता है उसी मे सतोप करता है और (पत) अन्त-प्रान्त नीरस आहार का (सेवए) सेवन करता है ॥३४॥

पूयणट्ठी जसोकामी, माणसम्माणकामए ।
बहुं पसवई पाव, मायासल्लं च कुव्वइ ॥३५॥

अन्वयार्थ—इस प्रकार छल-कपट से (पूयणट्ठी) पूजा को चाहने वाला (जसोकामी) यश की कामना करने वाला और (माणसम्माण कामए) मान-सम्मान का अभिलाषी—वह रस-लोलुपी साधु (वहु) वहुत (पाव) पाप (पसवई) उपार्जन करता है (च) और (मायासल्ल) माया रूपी शल्य का (कुव्वइ) सेवन करता है ॥३५॥

सुरं वा मेरग वा वि, अण्ण वा मज्जगं रसं।
ससक्खं ण पिवे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो।३६।

अन्वयार्थ—(अप्पणो) अपने (जस) संयम रूप निर्मल यश की (सारक्ख) रक्षा करने वाला (भिक्खू) साधु (ससक्ख) त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ भगवान् की साक्षी से (सुर) जौ आदि के आटे से बनी हुई मदिरा (वा) अथवा (मेरग) महुआ से बनी मदिरा (वा वि) अथवा (मज्जग) मद को उत्पन्न करने वाले (अण्णवा) दूसरे किसी भी (रस) रस को (ण पिवे) न पीवे ॥३६॥

पियए एगओ तेणो, ण मे कोई वियाणइ।
तस्स पस्सह दोसाइ, णियडिं च सुणेह मे ॥३७॥

अन्वयार्थ—(मे) मुझे (कोई) कोई भी (ण) नहीं (वियाणइ) देखता है—ऐसा मान कर जो (तेणो) भगवान् की आज्ञा का लोप करने वाला चोर साधु (एगओ) एकांत स्थान में लुक-छिप कर (पियए) मदिरा पीता है (तस्स) उसके (दोसाइ) दोषों को (पस्सह) देखो (च) और (मे) मैं

उसके (णियडि) मायाचार का वर्णन करता हूँ सो (सुणेह) तुम सुनो ॥३७॥

वड्ढइ सुंडिया तस्स, माया-मोसं च भिक्खुणो ।
अयसो य अणिव्वाणं, सयय च असाहुया ॥३८॥

अन्वयार्थ—(तस्स) मदिरा पान करने वाले (भिक्खुणो) साधु की (सुडिया) आसक्ति (माया) कपट (च) और (मोस) मृपावाद (अयसो) अपयश (य) तथा (अणिव्वाण) अतृप्ति आदि दोप (सयय) निरतर (वड्ढई) बढते रहते है इस प्रकार वह (असाहुया) असाधुता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सयम से भ्रष्ट हो जाता है ॥३८॥

णिच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
तारिसो मरणंते वि, ण आराहेइ संवरं ॥३९॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (तेणो) चोर (अत्त-कम्मेहिं) अपने किये हुए दुश्चरित्रो से (णिच्चुव्विग्गो) नित्य व्याकुल बना रहता है उसी प्रकार (तारिसो) वह मदिरा पीने वाला (दुम्मई) दुर्बुद्धि साधु सदा व्याकुल एव भयभीत बना रहता है, उसके चित्त को कभी शान्ति नही मिलती—ऐसा साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (ण आराहेइ) आराधना नही कर सकता ॥३९॥

आयरिए णाराहेइ, समणे यावि तारिसो ।
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं ।४०।

अन्वयार्थ—(तारिसो) वह मदिरा पीने वाला साधु (आयरिए) आचार्य महाराज तथा (समणे वा वि) साधुओं की किसी की भी (णाराहेइ) विनय वैयावच्च आदि से आराधना नही कर सकता और (जेण) जब (गिहत्था) गृहस्थ लोग (ण) उस साधु के (तारिस) मदिरा-पान रूपी दुर्गुण को (जाणति)जान लेते हैं तब(वि) वे भी (गरिहति) उसकी निन्दा करते हैं ॥४०॥

एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए ।
तारिसो मरणंते वि, णाराहेइ संवरं ॥४१॥

अन्वयार्थ—(एव तु) इस प्रकार (अगुणप्पेही) अवगुणों को धारण करने वाला (च) और (गुणाण) ज्ञानादि गुणो को (विवज्जए)छोडने वाला (तारिसो)वह साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (णाराहेइ) आराधना नही कर सकता ॥४१॥

तवं कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रसं ।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥४२॥

अन्वयार्थ—(मज्जप्पमायविरओ) मदिरापान एवं प्रमादादि दुर्गुणो से रहित (तवस्सी) तपस्वी (मेहावी) बुद्धिमान् साधु (पणीय) स्निग्ध (रस) रसो को (वज्जए) छोड कर (अइउक्कसो) निरभिमान पूर्वक (तव) तपस्या (कुव्वइ) करता है ॥४२॥

तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेगसाहुपूइयं ।
विउलं अत्थसंजुत्तं, कित्तइस्सं सुणेह मे ॥४३॥

अन्वयार्थ—गुरु शिष्यो से कहते हैं कि हे शिष्यो ! (तस्स) उपरोक्त गुणो के धारक साधु का (कल्लाण) कल्याण—सयम (अणेगसाहुपूइय) अनेक मुनियो द्वारा पूजित एवं प्रशसित (विउल) महान् (अत्थसजुत्त) मोक्ष रूपी अर्थ से युक्त होता है (पस्सह) तुम उसे देखो तथा (कित्तइस्स) मैं उस साधु के गुणो का वर्णन करूँगा, अत तुम (मे) मुझ से उन गुणो को (सुणेह) सुनो ॥४३॥

एवं तु गुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए ।
तारिसो मरणंते वि, आराहेइ संवरं ॥४४॥

अन्वयार्थ—(एवतु) इस प्रकार (गुणप्पेही) ज्ञानादि गुणो को धारण करने वाला (च) और (अगुणाण) दुर्गुणो को (विवज्जए) छोडने वाला (तारिसो) साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक (सवर) ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म की (आरा-हेइ) भली प्रकार आराधना करता रहता है अर्थात् मरणात कष्ट पडने पर भी वह ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म को नहीं छोडता ॥४४॥

आयरिए आराहेइ, समणे यावि तारिसो ।
गिहत्था वि णं पूयंति, जेण जाणंति तारिसं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(तारिसो) उपरोक्त गुणो का धारक साधु (आयरिए) आचार्य महाराज की तथा (समणे यावि) दूसरे

मुनियो की (आराहेइ) विनय-वैयावच्च द्वारा आराधना करता है और (जेण) जब (गिहत्था वि) गृहस्थ लोगो को भी (णं) उसके (तारिस) उन गुणो का (जाणति) पता लगता है तव वे (पूयति) उसकी भक्ति करते है अर्थात् विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते है और उसके गुणो की प्रशसा करते है ॥

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे णरे ।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं ॥४६॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (णरे) साधु (तवतेणे) तप का चोर (वयतेणे) वचन का चोर (य) और (रूवतेणे) रूप का चोर (य) तथा (आयारभावतेणे) आचार और भाव का चोर होता है वह (देवकिव्विस) नीच जाति के किल्विषी देवो मे (कुव्वइ) उत्पन्न होता है ॥४६॥

लद्धुण वि देवत्तं, उववण्णो देवकिव्विसे ।
तत्था वि से ण याणाइ, किं मेकिच्चा इमं फलं ॥४७॥

अन्वयार्थ—उपरोक्त चोर साधु (देवत्त) देवगति को (लद्धूण वि) प्राप्त कर के भी (देव किव्विसे) अस्पृश्य जाति के किल्विषी देवो मे (उववण्णो) उत्पन्न होता है। (तत्थावि) वहाँ पर भी (से) वह (ण याणाइ) यह नही जानता कि (किं) मैने ऐसा कौन-सा कर्म (किच्चा) किया है, जिससे (मे) मुझे (इम) यह (फल) फल प्राप्त हुआ है।

तत्तो वि से चइत्ताणं, लब्भिही एलमूयगं ।
णरगं तिरिक्खजोणिं वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा ॥४८॥

अन्वयार्थ—(से) वह किल्विषी देव (तत्तो वि) वहाँ से (चइत्ताण) च्यव कर (एलमूयग) मूक—जो बोल न सके ऐसे—बकरे आदि की योनि को पा कर फिर (णरग) नरक गति को (वा) अथवा (तिरिक्खजोणि) तिर्यंच योनि को (लब्भिही) प्राप्त होता है (जत्थ) जहाँ पर (बोही) बोधि—जिनधर्म की प्राप्ति होना (सुदुल्लहा) बडा दुर्लभ है।

एयं च दोसं दट्ठूणं, णायपुत्तेण भासियं।
अणुमायं पि मेहावी, मायामोसं विवज्जए ॥४९॥

अन्वयार्थ—(एय च) इस प्रकार (दोस) पूर्वोक्त दोषो को (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने (दट्ठूण) केवलज्ञान से देख कर (भासिय) फरमाया है, अतः (मेहावी) बुद्धिमान् साधु (अणुमाय पि) अणुमात्र भी (मायामोस) कपट पूर्ण असत्य भापण को (विवज्जए) वर्जे—किञ्चिन्मात्र भी मायामृपावाद का सेवन न करे ॥४९॥

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं,
संजयाण बुद्धाण सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिइंदिए,
तिव्वलज्जगुणवं विहरिज्जासि ॥५०॥

अन्वयार्थ—(सुप्पणिहिइदिए) जितेन्द्रिय एव एकाग्र चित्त वाला (तिव्वलज्ज) अनाचार से अत्यन्त लज्जा रखने वाला (गुणव) गुणवान् (भिक्खू) साधु (बुद्धाण) तत्त्व

को जानने वाले (सजयाण) साधुओ के (सगासे) पास (भिक्खे-सणसोहि) भिक्षा के आधाकर्मादि दोषो को (सिक्खिऊण) सीख कर (तत्थ) एषणा समिति मे (विहरिज्जासि) उपयोग पूर्वक विचरे ॥५०॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

दूसरा उद्देशक पूर्ण

॥ पाँचवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'महाचार' नामक छठा अध्ययन

णाणदंसणसंपण्णं, संजमे य तवे रयं।
गणिमागमसंपण्णं, उज्जाणम्मि समोसढं ॥१॥
रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया।
पुच्छंति णिहुअप्पाणो, कहं भे आयारगोयरो? ॥२॥

अन्वयार्थ—(णाणदसण सपण्ण) एक समय सम्यक्ज्ञान और सम्यक् दर्शन के धारी (सजमे) सतरह प्रकार के सयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रय) रत (आगम सपण्ण) आचारागादि अगोपाग रूप आगम के ज्ञाता (गणि) छत्तीस गुणो के धारक आचार्य महाराज (उज्जाणमि) गाँव के समीप के बगीचे मे (समोसढ) पधारे तब (रायाणो) राजा (य) और (रायमच्चा) राजमत्री (माहणा) ब्राह्मण (अदुव) और (खत्तिया) क्षत्रिय (णिहुअप्पाणो) मन की चचलता को छोड कर भक्ति और विनयपूर्वक (पुच्छति) उनसे पूछते हैं कि—हे भगवन्! (भे) आप लोगो का (आयार-गोयरो) आचार और गोचर—भिक्षावृत्ति आदि धर्म (कह) किस प्रकार का है?

तेसिं सो णिहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो ॥३॥

अन्वयार्थ—(णिहुओ) निश्चल—चचलता रहित (दतो) इन्द्रियो का दमन करने वाले(सव्वभूय सुहावहो)सभी प्राणियो का हित चाहने वाले (सिक्खाए) ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा से (सुसमाउत्तो) सुसम्पन्न (वियक्खणो) विचक्षण—धर्मोपदेश मे कुशल (सो) वे आचार्य महाराज (तेसिं) उन राजा आदि को (आयक्खइ) जैन साधुओ का आचार-गोचर रूप धर्म कहते हैं अर्थात् उनके प्रश्न का उत्तर देते हैं ॥३॥

हदि धम्मत्थकामाणं, निग्गंथाणं सुणेह मे ।
आयारगोयरं भीमं, सयलं दुरहिट्ठियं ॥४॥

अन्वयार्थ—(हदि) हे देवानुप्रियो ! (धम्मत्थकामाण) धर्म—श्रुतचारित्र रूप धर्म और अर्थ—मोक्ष के अभिलाषी (णिग्गथाण) निर्ग्रंथ मुनियो का (सयल) समस्त (आयार-गोयर) आचार गोचर जो कि (भीम) कर्म रूपी शत्रुओ के लिए भयकर है तथा (दुरहिट्ठिय) जिसे धारण करने मे कायर पुरुष घबराते हैं, ऐसे आचार-गोचर का (मे) मैं वर्णन करता हूँ अत (सुणेह) तुम सावधान हो कर सुनो ॥४॥

णण्णत्थ एरिसं वुत्त, ज लोए परमदुच्चरं ।
विउलट्ठाणभाइस्स, ण भूयं ण भविस्सइ ॥५॥

अन्वयार्थ—(विउलट्ठाणभाइस्स) विपुलस्थान—मोक्ष मार्ग के आराधक मुनियो का (एरिस) इस प्रकार का उन्नत आचार (अण्णत्थ) जिन शासन के अतिरिक्त अन्य मतो मे ऐसा आचार (ण वुत्त) कही भी नही कहा गया है (ज) जो (लोए) लोक मे

(परमदुच्चर) अत्यन्त दुष्कर है अर्थात् जिसका पालन करना बहुत कठिन है। जिनशासन के अतिरिक्त अन्य मतो मे ऐसा आचार (ण भूय) न तो गत काल मे कही हुआ है और (ण भविस्सइ) न आगामी काल मे कही होगा और न वर्तमान काल मे कही है।

सखुड्डगवियत्ताणं, वाहियाणं च जे गुणा।
अखंडफुडिया कायव्वा, त सुणेह जहा तहा ॥६॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (गुणा) गुण (सखुड्डगवियत्ताण) बालक एव वृद्धो को (वाहियाण च) स्वस्थ एव अस्वस्थ सभी को सब अवस्थाओ मे (अखड फुडिया) अखड एव निर्दोष रूप से अर्थात् देश विराधना और सर्व विराधना से रहित (कायव्वा) धारण करने चाहिये (त) उन गुणो का (जहा) जैसा स्वरूप है (तहा) मै वैसा ही वर्णन करता हूँ (सुणेह) अत तुम साव-धान हो कर सुनो ॥६॥

दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोऽवरज्झइ।
तत्थ अण्णयरे ठाणे, निग्गंथत्ताउ भस्सइ ॥७॥

अन्वयार्थ—(दस अट्ठ य) साधु आचार के अठारह (ठाणाइ) स्थान है। (बालो) जो बाल—अज्ञानी साधु (जाइ) इन (तत्थ) अठारह स्थानो मे से (अण्णयरे) किसी एक भी (ठाणे) स्थान की (अवरज्झइ) विराधना करता है वह (णिग्गथत्ताउ) साधुपने से (भस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है।

वयछक्कं कायछक्क, अकप्पो गिहिभायणं।
पलियंकणिसिज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ॥८॥

अन्वयार्थ—(वयछक्क) छ व्रत अर्थात् प्राणातिपात विरमण आदि पांच महाव्रत और छठा रात्रि-भोजन त्याग रूप छ व्रतो का पालन करना (कायछक्क) छ काय अर्थात् पृथ्वी-काय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस-काय इन छ काय जीवो की रक्षा करना (अकप्पो) अकल्पनीय पदार्थों को ग्रहण न करना (गिहिभायण) गृहस्थ के वरतन मे भोजनादि न करना (पलियक) पलग पर न बैठना (णिसज्जा) गृहस्थ के आसन पर न बैठना (सिणाण) स्नान (य) तथा (सोहवज्जण) शरीर की शोभा का त्याग करना, साधु के ये अठारह स्थान है ॥८॥

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
अहिंसा णिउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥९॥

अन्वयार्थ—(सव्वभूएसु) प्राणी मात्र पर (सजमो) दया रूप (अहिंसा) अहिंसा (णिउणा) अनन्त सुखो को देने वाली है ऐसा (महावीरेण) भगवान् महावीर ने (दिट्ठा) केवलज्ञान मे देखा है। इसीलिए भगवान् ने (तत्थ) उपरोक्त अठारह स्थानो मे (इम) इस अहिंसा व्रत को (पढम) पहला (ठाण) स्थान (देसिय) कहा है ॥ ॥

जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा, ण हणे णो वि घायए ॥१०॥

अन्वयार्थ—(लोए) चौदह राजू परिमाण लोक में (जावति) जितने (तसा) त्रस (अदुव) अथवा (थावरा)

स्थावर (पाणा) प्राणी हैं (ते) उनको (जाण) जान कर (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से—प्रमाद वश (ण हणे) स्वय मारे नही (णो वि) और न दूसरो से (घायए) घात ही करावे—इसी प्रकार मारने वाले की अनुमोदना भी नही करे ॥ (हिंसा क्यो नही करनी चाहिए, इस विषय मे सूत्रकार कहते हैं कि—

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं ण मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं, णिग्गंथा वज्जयंति णं ॥११॥

अन्वयार्थ—(सव्वे वि) त्रस और स्थावर सभी (जीवा) जीव (जीविउ) जीना (इच्छति) चाहते हैं (ण मरिज्जिउ) मरना कोई भी नही चाहता (तम्हा) इसीलिए (णिग्गथा) छ काया के रक्षक निर्ग्रंथ साधु (ण) उस (घोर) महा भयकर (पाणिवह) प्राणिवध—जीव-हिंसा का (वज्जयति) सर्वथा त्याग करते हैं ॥११॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं ण मुस बूया, णो वि अण्णं वयावए ॥१२॥

अन्वयार्थ—साधु (अप्पणट्ठा) अपने खुद के लिए (वा) अथवा (परट्ठा) दूसरो के लिए (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा मान, माया, लोभ से (जाइवा) अथवा (भया) भय से (हिंसग) पर पीडाकारी (मुस) झूठ (ण बूया) स्वय न बोले (णो वि) और न (अण्ण) दूसरो से (वयावए) बुलवावे, तथा झूठ बोलने वालो का अनुमोदन भी नही करे ॥१२॥

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ॥१३॥

अन्वयार्थ—(लोगम्मि) ससार मे (सव्वसाहूहिं) सभी महापुरुषो ने (मुसावाओ) असत्य-मापण को (गरिहिओ) निन्दित बतलाया है (य) क्योकि असत्य-भाषण (भूयाण) सभी प्राणियो के लिए (अविम्सासो) अविश्वनीय है, अर्थात् असत्यवादी का कोई विश्वास नही करता (तम्हा) इसलिए (मोस), मृषावाद का (विवज्जए) सर्वथा त्याग करना चाहिए ॥१३॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गह सि अजाइया ॥१४॥
तं अप्पणा ण गिण्हंति, णो वि गिण्हावए परं ।
अण्णं वा गिण्हमाणं पि, णाणुजाणंति संजया ।१५।

अन्वयार्थ—(चित्तमत)' सचेतन—शिष्यादि हो (वा) अथवा (अचित्तं) अचेतन वस्त्र-पात्रादि हो (वहु) वहुमूल्य पदार्थ हो (जइ वा) अथवा (अप्प) अल्प मूल्य वाला हो, यहाँ तक कि (दतसोहणमित्त पि) दाँत कुरेदने का तिनका भी हो (सजया) साधु (सि) उस वस्तु के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) माँगे बिना (त) उस पदार्थ को (अप्पणा) आप स्वय (ण गिण्हति) ग्रहण नही करते (णो वि) और न (पर) दूसरो से (गिण्हावए) ग्रहण करवाते हैं (वा) और (गिण्हमाण पि) ग्रहण करते हुए (अण्ण) दूसरो को (णाणु-

जाणति) भला भी नही समझते ॥१४-१५॥

अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्ठियं ।
णायरति मुणी लोए, भेयाययणवज्जिणो ॥१६॥

अन्वयार्थ—(लोए) लोक मे (भेयाययण वज्जिणो) चारित्र का भग करने वाले स्थानो को वर्जने वाले—पापभीरु (मुणी) मुनि (घोर) नरकादि दुर्गतियो मे डालने वाला अत-एव भयकर (पमाय) प्रमाद उत्पन्न करने वाला (दुरहिट्ठिय) परिणाम मे दु खदायी (अवभचरिय) अब्रह्मचर्य का (णायरति) सेवन कदापि नही करते ॥१६॥

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सयं ।
तम्हा मेहुणसंसग्गं, णिग्गंथा वज्जयति णं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(एय) यह अब्रह्मचर्य (अहम्मस्स) अधर्म का (मूल) मूल है और (महादोससमुस्सय) महा दोषो का समूह है (तम्हा) इसीलिए (णिग्गथा) निर्ग्रन्थ साधु (मेहुण ससग्ग) मैथुन के ससर्ग को (ण) सर्वथा प्रकार से (वज्जयति) छोडते हैं ॥१७॥

विडमुब्भेइमं लोणं, तिल्लं सप्पिं च फाणियं ।
ण ते संणिहिमिच्छंति, णायपुत्तवओरया ॥१८॥

अन्वयार्थ—(णायपुत्तवओरया) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो मे जो रत रहते हैं (ते) वे मुनि (बिड) बिड—लवण (उब्भेइम) सामुद्रिक (लोण) लवण (तिल्ल) तेल (सप्पि)

घी (च) और (फाणिय) गीला गुड आदि पदार्थों का (सणिहिं) सग्रह करना—रात्रि मे वासी रखना (ण इच्छति) नही चाहते ॥१८॥

लोहस्सेस अणुप्फासे, मण्णे अण्णयरामवि ।
जे सिया संणिहिकामे, गिही पव्वइए ण से ॥१९॥

अन्वयार्थ—(एस) यह सन्निधि—सग्रह (लोहस्स) लोभ का (अणुप्फासे) अनुस्पर्श—प्रभाव है, अत (मण्णे) तीर्थंकर देव ऐसा मानते है अथवा तीर्थंकर और गणधरो ने ऐसा कहा है कि (सिया) यदि कदाचित् किसी भी समय (जे) जो साधु (अण्णयरामवि) किंचिन्मात्र भी (मणिहिं) सग्रह करना तो दूर रहा, किन्तु सग्रह करने की (कामे) इच्छा करता है तो (से) वह (ण पव्वइए) साधु नही, किन्तु (गिही) गृहस्थ है।

जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं ।
तं पि संजम-लज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ।२०।

यदि कोई यह शका करे कि साधु वस्त्र-पात्र आदि वस्तुएँ अपने पास रखते हैं, तो क्या ये वस्तुएँ सग्रह या परिग्रह नही हैं ? इसका समाधान किया जाता है कि—

अन्वयार्थ—(ज पि) साधु जो (वत्थ) वस्त्र (व) अथवा (पाय) पात्र (कवल) कम्वल (वा) अथवा (पायगुछण) रजोहरण आदि शास्त्रोक्त सयम के उपकरण (धारति) धारण करते हैं (य) और (परिहरति) अनासक्ति भाव से उनका उपभोग करते हैं (त पि) वह (सजम-लज्जट्ठा) केवल सयम

की रक्षा के लिए और लज्जा के लिए ही करते हैं ॥२०॥

ण सो परिग्गहो वुत्तो, णायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२१॥

वस्त्र पात्रादि रखने से साधु को परिग्रह् दोष क्यो नहीं लगता ? इसका समाधान किया जाता है—

अन्वयार्थ—(ताइणा) प्राणी मात्र के रक्षक (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने (सो) अनासक्ति भाव से वस्त्र पात्रादि रखने को (परिग्गहो) परिग्रह (ण वुत्तो) नही कहा है, किन्तु (मुच्छा) मूर्च्छाभाव को ही अर्थात् किसी वस्तु मे आसक्ति रखने को ही (परिग्गहो) परिग्रह (वुत्तो) कहा है और (इइ) ऐसा ही (महेसिणा) महर्षि गणधर देव ने अथवा सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जम्बुस्वामी से (वुत्त) कहा है।

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खणपरिग्गहे ।
अवि अप्पणो वि देहम्मि, णायरंति ममाइयं ॥२२॥

अन्वयार्थ—(बुद्धा) तत्त्वज्ञ मुनि (सव्वत्थुवहिणा) सयम के सहायभूत वस्त्र-पात्रादि उपकरणो को (सरक्खण परिग्गहे) एक मात्र सयम की रक्षा के लिए ही रखते है, मूर्च्छाभाव से नही (अवि) और विशेष तो क्या, वे तो (अप्पणो वि) अपने (देहम्मि) शरीर पर भी (ममाइय) ममत्व भाव (णायरति) नही रखते ॥२२॥

अहो णिच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं ।
जाय लज्जा समावित्ती, एगभत्तं च भोयणं ॥२३॥

अन्वयार्थ— (सव्वबुद्धेहिं) सभी ज्ञानी पुरुषो ने (वण्णिय) कहा है कि (अहो) अहो! साधुओ के लिए यह कैसा (निच्च) नित्य (तवोकम्म) तप है (जाव) जो जीवन पर्यन्त (लज्जासमा) सयम-निर्वाह के लिए (वित्ती) भिक्षा वृत्ति करनी होती है और (एगभत्त) एक बार अथवा केवल दिन मे ही (भोयण) आहार-करना होता है और रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग करना होता है ॥२३॥

संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ? ॥२४॥

अन्वयार्थ—(इमे) ये ससार मे बहुत-से (तसा) त्रस (अदुव) और (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी (सुहुमा) इतने सूक्ष्म (सति) होते हैं (जाइ) जो (राओ) रात्रि मे (अपासतो) दिखाई नही देते, तो फिर उनकी रक्षा करते हुए (एसणिय) आहार की शुद्ध एषणा और (चरे) भोजन करना (कह) कैसे हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता ॥२४॥

उदउल्ल बीयसंसत्तं, पाणा णिवडिया महिं।
दिया ताइं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कहं चरे ॥२५॥

अन्वयार्थ—(महिं) पृथ्वी पर (उदउल्लं) पडा हुआ पानी अथवा सचित्त जल मिश्रित आहार (बीयसंसत्त) पृथ्वी पर बिखरे हुए बीज अथवा सचित्त बीजादि से युक्त आहार (णिवडिया) और भूमि पर रहे हुए (पाणा) कीड़े-मकोडे आदि प्राणी (ताइ) इन सब को (दिआ) दिन मे तो (विव-

ज्जिज्जा) आँखो से देख कर बचाया जा सकता है, किन्तु (राओ) रात्रि मे (तत्थ) उनकी रक्षा करते हुए (कह) कैसे (चरे) चला जा सकता है ?

भावार्थ—साधु के लिए रात्रि-भोजन और रात्रि-विहार दोनो का निषेध है ।

एय च दोसं दट्ठूणं, णायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहारं ण भुंजंति, णिग्गंथा राइभोयणं ॥२६॥

अन्वयार्थ—(णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के (भासिय) बतलाये हुए (एय) इन प्राणिहिसा रूप (च) तथा आत्मविराधना रूप (दोस) दोषो को (दट्ठूणं) देख कर—जान कर (णिग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (सव्वाहार) चार प्रकार के आहारो मे से किसी भी प्रकार का आहार (राइभोयणं) रात्रि मे (ण भुजति) नही करते ॥२६॥

पुढविकायं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥२७॥

अन्वयार्थ—(सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (पुढविकाय) पृथ्वीकाय की (ण हिंसति) हिंसा नही करते, दूसरो से नही करवाते, करने वालों की अनुमोदना भी नही करते ॥२८॥

पुढवीकायं विहिंसंतो, हिंसइ उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥२८॥

अन्वयार्थ—(पुढविकाय) पृथ्वीकाय की (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चक्षुओ द्वारा दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ से नही दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा करता है ॥२८॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
पुढविकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥२९॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को वढाने वाले (एय) इन (दोस) दोपो को (विया-णित्ता) जान कर साधु को (पुढविकायसमारभ) पृथ्वीकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्यार करना चाहिए ॥२९॥

आउकायं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, सजया सुसमाहिया ॥३०॥

अन्वयार्थ—(सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (आउ-काय) अप्काय की (ण हिंसति) हिंसा नही करते, दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते ।

आउकायं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥३१॥

अन्वयार्थ—(आउकाय) अप्काय की (विहिसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ॥३१॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
आउकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥३२॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (आउकायसमारभ) अप्काय के समारभ का (जावज्जीवाए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३२॥

जायतेयं ण इच्छंति, पावगं जलइत्तए ।
तिक्खमण्णयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं ॥३३॥

अन्वयार्थ—साधु (जायतेय) अग्नि को (जलइत्तए) सुलगाने की (ण इच्छति) कभी भी इच्छा न करे, क्योंकि वह (पावग) पापकारी है और (अण्णयर सत्थ) लोह के अस्त्र-शस्त्रो की अपेक्षा भी (तिक्ख) अधिक तीक्ष्ण शस्त्र है (सव्वओ वि दुरासय) उसे सह लेना अत्यन्त दुष्कर है ॥३३॥

पाइणं पडिणं वा वि, उड्ढं अणुदिसामवि ।
अहे दाहिणओ वा वि, दहे उत्तरओ वि य ॥३४॥

अन्वयार्थ—(पाईण) पूर्व (वा वि) और (पडिण) पश्चिम (दाहिणओ) दक्षिण (वा वि) और (उत्तरओ वि) उत्तर दिशा मे (य) तथा (अणुदिसामवि) चारो विदिशाओ मे (उड्ढं) ऊची और (अहे) नीची दिशा मे अर्थात् दस दिशाओ मे रहे हुए जीवो को (दहे) यह अग्नि जला कर भस्म कर देती है ॥३४॥

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो ण संसओ ।
तं पईवपयावट्ठा, संजया किंचि नारभे ॥३५॥

अन्वयार्थ—(एस) यह (हव्ववाहो) अग्नि (भूयाण) प्राणियों का (आघाओ) आघात स्वरूप है अर्थात् प्राणियो की घात करने वाली है (ण ससओ) इसमे कुछ भी सदेह नहीं है। इसलिए (सजया) सयमी मुनि (त) उस अग्नि का (पईवपयावट्ठा) प्रकाश के लिए तथा शीत निवारण आदि कार्यों के लिए (किंचि) किंचिन्मात्र भी (णारभे) आरम्भ नही करे ॥३५॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
तेउकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥३६॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) उपरोक्त (दोसं) दोषो को (वियाणित्ता) जान कर साधु को (तेउकायसमारभ) अग्निकाय

के समारम्भ का (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३६॥

अणिलस्स समारंभं, बुद्धा मण्णंति तारिसं ।
सावज्जबहुलं चेयं, णेयं ताईहि सेवियं ॥३७॥

अन्वयार्थ—(बुद्धा) तीर्थंकर भगवान् (अणिलस्स) वायु-काय के (समारभ) आरम्भ को (तारिस) उसी प्रकार का अर्थात् अग्निकाय के आरम्भ जैसा (सावज्जबहुल) अत्यन्त पापकारी (मण्णति) मानते हैं—केवलज्ञान द्वारा जानते हैं (एय च) इस कारण (ताईहि) छः काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) वायुकाय का समारम्भ (ण सेविय) कदापि न करना चाहिए ॥३७॥

तालियंटेण पत्तेण, साहाविहुयणेण वा ।
ण ते वीइउमिच्छति, वेयावेऊण वा परं ॥३८॥

अन्वयार्थ—(ते) वे छ काय जीवो के रक्षक मुनि (तालि-यटेण) ताल के पखे से (पत्तेण) पत्ते से (वा) अथवा (साहा-विहुयणेण) वृक्ष की शाखा को हिला कर (वीइउ) अपने ऊपर हवा करना (ण) नही (इच्छति) चाहते (वा) और न (पर) दूसरे से (वेयावेऊण) हवा करवाना चाहते हैं तथा हवा करने वाले की अनुमोदना भी नही करते ॥३८॥

जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं ।
ण ते वायमुईरंति, जयं परिहरंति य ॥३९॥

अन्वयार्थ—(ज पि) जो (वत्थ) वस्त्र (व) और (पाय) पात्र (कवल) कवल (वा) अथवा (पायपुछण) रजोहरण आदि सयमोपकरण साधु के पास हैं उनसे भी (ते) वे (वाय) वायु की (ण उईरति) उदीरणा नही करते (य) किन्तु (जय) यतनापूर्वक (परिहरति) धारण करते है, जिससे वायुकाय की विराधना नही होती ॥३९॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वाउकाय समारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥४०॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (विया-णित्ता) जान कर साधु को (वायुकाय समारभं) वायुकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४०॥

वणस्सइं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएणं, संजया सुसमाहिया ॥४१॥

अन्वयार्थ—(सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (ण हिंसति) हिंसा नही करते, दूसरो से नहीं करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते ॥४१॥

वणस्सइं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४२॥

अन्वयार्थ—(वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसके आश्रय मे रहे हुए (चक्खु से) चक्षुओ से दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ से नही दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई) हिसा कर देता है ॥४२॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वणस्सइसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥४३॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (विया-णित्ता) जान कर, साधु को (वणस्सइ समारभ) वनस्पतिकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४३॥

तसकायं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥४४॥

अन्वयार्थ—(सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसावयसाकायसा) मन वचन और काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (तस-काय) त्रसकाय की (ण हिंसति) हिंसा नही करते, दूसरो से

नही करवाते और हिंसा करने वालो की अनुमोदना भी नही करते।

तसकायं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४५॥

अन्वयार्थ—(तसकाय) त्रसकाय की (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसके आश्रय मे रहे हुए (चक्खुस) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) नाना प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई) हिंसा कर देता है ॥४५॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
तसकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥४६॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियों को बढ़ाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जान कर साधु को (तसकायसमारभ) त्रसकाय के समारभ का (जावज्जीवाए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४६॥

जाइं चत्तारिऽभुज्जाइं, इसिणाहारमाइणि ॥
ताइं तु विवज्जंतो, संजमं अणुपालए ॥४७॥

अन्वयार्थ—(जाइ) जो (आहारमाइणि) आहार, शय्या, वस्त्र-पात्रादि (चत्तारि) चार पदार्थ (इसिणा) मुनियो के लिए (अभुज्जाइ) अकल्पनीय हैं (ताइ) उनको (तु) निश्चय पूर्वक (विवज्जतो) त्यागता हुआ साधु (सजम) सयम का (अणुपालए) यथाविधि-पालन करे ॥४७॥

पिंडं सिज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं ण इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ।४८।

अन्वयार्थ—(पिंड) आहार (च) और (सिज्जं) शय्या (च) तथा (वत्थ) वस्त्र (य) और (चउत्थ) चौथा (पायमेव) पात्र, ये यदि (अकप्पिय) अकल्पनीय हो तो साधु (ण इच्छिज्जा) ग्रहण न करे और यदि (कप्पिय) कल्पनीय हों तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण कर सकता है ॥४८॥

जे णियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाहडं ।
वहं ते समणुजाणंति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥४९॥

अन्वयार्थ—(णियाग) आमन्त्रित पिंड (कीय) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक—साधु के निमित्त बनाये हुए और (आहडं) साधु के निमित्त उसके सामने लाये हुए आहारादि को (जे) जो साधु (ममायंति) ग्रहण करते हैं (ते) वे (वह) प्राणिवध—हिंसा की (समणुजाणंति) अनुमोदना करते हैं (इइ) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर ने (वुत्तं) कहा है ॥४९॥

तम्हा असणपाणाइं, कीयमुद्देसियाहडं ।
वज्जयंति ठियप्पाणो, णिग्गंथा धम्मजीविणो ।५०।

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (ठियप्पाणो) सयम मे स्थिर आत्मा वाले (धम्मजीविणो) धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले (णिग्गथा) निर्ग्रंथ मुनि (कीय) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक—साधु के निमित्त बनाये

हुए और (आहड) साधु के निमित्त सम्मुख लाये हुए (असण-पाणाइ) आहार-पानी आदि को (वज्जयंति) ग्रहण नहीं करते।

कंसेसु कंसपाएसु, कुंडमोएसु वा पुणो।
भुंजतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सइ ॥५१॥

अन्वयार्थ—जो साधु (कसेसु) गृहस्थ की कांसी आदि की कटोरी मे (वा) अथवा (कसपाएसु) कांसी आदि के थाल मे (पुणो) और (कुडमोएसु) मिट्टी के बरतन मे (असण-पाणाइ) आहार-पानी (भुंजतो) भोगता है, वह (आयार) चारित्र धर्म से (परिभस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है ॥५१॥

सीओदगसमारभे, मत्तधोयणछड्डणे।
जाइं छणंति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥५२॥

अन्वयार्थ—जब साधु गृहस्थ के वरतन मे भोजन करने लग जायगा तो (सीओदगसमारभे) सचित्त जल का आरम्भ होगा अर्थात् गृहस्थ उस बरतन को कच्चे जल से धोवेगा, उसमे अप्काय की हिंसा होगी और (मत्तधोयणछड्डणे) वरतनो के धोये हुए पानी को अयतनापूर्वक इधर-उधर गिराने से, (जाइ भूयाइ) बहुत से जीवो की (छणति) हिंसा होगी अत (तत्थ) गृहस्थ के बरतन मे भोजन करने मे तीर्थंकर देव ने केवलज्ञान द्वारा (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है ॥५२॥

पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, सिया तत्थ ण कप्पइ।
एयमट्ठं ण भुंजंति, णिग्गंथा गिहिभायणे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) गृहस्थ के बरतन मे भोजन करने से (पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म और (पुरेकम्म) पुर कर्म दोष (सिया) लगने की सम्भावना रहती है, अत साधु को यह (ण कप्पइ) नही कल्पता है (एयमट्ठ) इसलिए (णिग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (गिहिभायणे) गृहस्थ के बरतन मे (ण भुजति) भोजन नही करते हैं ॥५३॥

आसंदीपलियंकेसु, मंचमासालएसु वा ।
अणायरियमज्जाणं, आसइत्तु सइत्तु वा ॥५४॥

णासंदीपलियकेसु, ण णिसिज्जा ण ढिए ।
णिग्गंथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्तमहिट्ठगा ॥५५॥

अन्वयार्थ—(आसदी पलियकेसु) बेंत आदि की कुर्सी और पलग पर (वा) अथवा (मंचमासालएसु) खाट और आरामकुर्सी आदि पर (आसइत्तु) बैठना (वा) अथवा (सइत्तु) सोना (अज्जाण) साधुओ के लिए (अणायरिय) अनाचार रूप है इसलिए (वुद्धवुत्तमहिट्ठगा) तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले (णिग्गथा) निर्ग्रंथ मुनियो को चाहिये कि वे (ण) न तो (आसदी पलिअकेसु) कुर्सी और पलग पर बैठे और सोवे और (ण) न (णिसिज्जा) रुई की गद्दी सहित आसन पर और (ण) न (पीढए) बेंत के बने हुए आसन विशेष पर बैठे और सोवे क्योकि (अपडिलेहाए) इनकी पडि-लेहणा होना कठिन है ॥५४-५५॥

गंभीरविजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ।
आसदीपलियंको य, एयमट्ठ विवज्जिया ॥५६॥

अन्वयार्थ—(एए) कुर्सी पलग आदि इन सब मे (गभीर-विजया) उडे छिद्र होते हैं अत. (पाणा) वेइन्द्रियादि प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) पडिलेहणा होना कठिन है (एयमट्ठ) अत मुनियो को (आसदी) कुर्सी (य) और (पलियको) पलग आदि का (विवज्जिया) त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन आसनो पर सोना बैठना नही चाहिए ॥५६॥

गोयरग्गपविट्ठस्स, णिसेज्जा जस्स कप्पइ ।
इमेरिसमणायारं, आवज्जइ अबोहियं ॥५७॥

अन्वयार्थ—(गोयरग्ग पविट्ठस्स) गोचरी गया हुआ (जस्स) जो साधु (णिसिज्जा कप्पइ) गृहस्थ के घर पर बैठता है उसे (इमेरिस) अगली गाथा मे कहे जाने वाला (अणायार) अनाचार दोष लगने की सम्भावना रहती है तथा (अबोहिय) मिथ्यात्व की (आवज्जइ) प्राप्ति होती है ॥५७॥

विवत्तो बंभचेरस्स, पाणाणं च वहे वहो ।
वणीमगपडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिणं ॥५८॥

अन्वयार्थ—गृहस्थ के घर बैठने से साधु के (वभचेरस्स) ब्रह्मचर्य के (विवत्ती) नाश होने की तथा (पाणाण) प्राणियो का (वहे) वध होने से (वहो) सयम दूपित होने की सम्भावना रहती है (वणीमगपडिग्घाओ) तथा उस समय यदि कोई भिखारी भिक्षा के लिए आवे, तो उसकी भिक्षा मे अन्तराय

होने की सम्भावना रहती है (च) और साधु के चारित्र पर सन्देह होने से (अगारिण) गृहस्थ (पडिकोहो) कुपित हो सकता है ॥५८॥

अगुत्ती बंभचेरस्स, इत्थीओ वा वि संकणं ।
कुसीलवड्ढणं ठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥५९॥

अन्वयार्थ—गृहस्थ के घर बैठने से (बभचेरस्स) साधु के ब्रह्मचर्य की (अगुत्ती) गुप्ति—रक्षा नही हो सकती (वा वि) और (इत्थीओ) स्त्रियो के विशेष ससर्ग से (सकण) ब्रह्मचर्य व्रत मे शका उत्पन्न हो सकती है। इसलिए (कुसीलवड्ढण) कुशील को बढाने वाले (ठाण) इस स्थान को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्ज दे ॥५९॥

तिण्हमण्णयरागस्स, णिसिज्जा जस्स कप्पई ।
जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो ॥६०॥

अन्वयार्थ—(जराए अभिभूयस्स) जराग्रस्त—बुड्ढा (वाहियस्स) रोगी और (तवस्सिणो) तपस्वी (तिण्ह) इन तीन में से (अण्णयरागस्स जस्स) किसी भी साधु को कारणवश (णिसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना (कप्पई) कल्पता है अर्थात् शारीरिक निर्बलतादि के कारण यदि ये गृहस्थ के घर बैठे तो पूर्वोक्त दोषो की सम्भावना नही है ॥६०॥

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाणं जो उ पत्थए ।
वुक्कंतो होइ आयारो, जढो हवइ संजमो ॥६१॥

अन्वयार्थ—(वा) चाहे (वाहिओ) रोगी हो (वा) अथवा (अरोगी) नीरोग हो, किन्तु (जो) जो साधु (सिणाण) स्नान करने की (पत्थए) इच्छा करता है (उ) तो निश्चय ही (आयारो) वह आचार से (वुक्कतो) भ्रष्ट (होइ) हो जाता है और (सजमो) उसका सयम (जढो) मलिन (हवइ) हो जाता है ॥६१॥

संतिमे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासु य ।
जे य भिक्खू सिणायंतो, वियडेणुप्पलावए ॥६२॥

अन्वयार्थ—(घसासु) खारवाली, पोली भूमि मे (य) और (भिलगासु) फटी हुई दरारो वाली मे (सुहुमा) सूक्ष्म (पाणा) प्राणी (सति) होते है; अत यदि (भिक्खू) साधु (वियडेण) गरम जल से भी (सिणायतो) स्नान करेगा तो (इमे) उन सूक्ष्म जीवो को (उप्पलावए) हिंसा हुए विना न रहेगी ॥६२॥

तम्हा ते ण सिणायंति, सीएण-उसिणेण वा ।
जावज्जीवं वयं घोरं, असिणाणमहिट्ठगा ॥६३॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (ते) शुद्ध सयम का पालन करने वाले साधु (सीएण) ठडे जल से (वा) अथवा (उसिणेण) गरम जल से (ण सिणायति) कभी भी स्नान नही करते किन्तु, वे (जावज्जीव) जीवन पर्यंत (असिणाण) अस्नान नामक (घोर) कठिन (वय) व्रत का (अहिट्ठगा) पालन करते है ॥६३॥

सिणाणं अदुवा कक्कं, लोद्धं पउमगाणि यं ।
गायस्सुव्वट्टणट्ठाए, णायरंति कयाइ वि ॥६४॥

अन्वयार्थ—सयमी पुरुष (सिणाण) स्नान (अदुवा) अथवा (कक्क) कल्क—चन्दनादि सुगन्धी द्रव्य (लोद्ध) लोद (य) और (पउमगाणि) कुकुम-केसर आदि सुगधित द्रव्यो का (गायस्सुव्वट्टणट्ठाए) अपने शरीर के उबटन—मर्दन के लिए (कयाइ वि) कदापि (णायरति) सेवन नही करते ॥६४॥

णगिणस्स वा वि मुंडस्स, दीहरोमणहंसिणो ।
मेहुणा उवसतस्स, किं विभूसाइ कारियं ॥६५॥

अन्वयार्थ—(णगिणस्स) प्रमाणोपेत वस्त्र रखने वाला स्थविरकल्पी अथवा नग्न रहने वाला जिनकल्पी (मुडस्स) द्रव्य और भाव से मुण्डित (दीहरोमणहंसिणो) और जिसके नख और केश बढे हुए है ऐसे (वा वि) तथा (मेहुणा) विषय-वासना से (उवसतस्स) सर्वथा उपशात साधु को (विभूसाइ) शरीर की शोभा एव शृगार से (किं) क्या (कारिय) प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है ॥६५॥

विभूसावत्तियं भिक्खू, कम्मं बंधइ चिक्कणं ।
संसारसायरे घोरे, जेणं पडइ दुरुत्तरे ॥६६॥

अन्वयार्थ—(विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा एव शोभा-शृगार करने से (भिक्खू) साधु को (चिक्कण) ऐसे चीकने (कम्म) कर्मो का (बधइ) बध होता है (जेण) जिससे वह (घोरे) जन्म-जरा मरण के भय से भयकर (दुरुत्तरे) कठिनता

से पार किये जाने वाले (ससारसायरे) ससार रूपी सागर मे (पडइ) गिर पडता है ॥६६॥

विभूसावत्तियं चेयं, बुद्धा मण्णंति तारिसं ।
सावज्जबहुलं चेयं, णेयं ताईहिं सेवियं ॥६७॥

अन्वयार्थ—(बुद्धा) ज्ञानी पुरुष (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा सम्बन्धी सकल्प-विकल्प करने वाले (चेय) मन को (तारिस) चीकने कर्मबन्ध का कारण (च) और (सावज्ज बहुल) बहुत पापो की उपत्पत्ति का हेतु (मण्णति) मानते हैं (एय) इसलिए (ताईहिं) छ काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) शरीर की विभूषा का (ण सेविम) चिन्तन भी नही करना चाहिए ॥६७॥

खवेंति अप्पाणममोहदंसिणो,
तवे रया संजम अज्जवे गुणे ।
धुणंति पावाइं पुरेकडाइं,
णवाइ पावाइं ण ते करेंति ॥६८॥

अन्वयार्थ—(अमोहदसिणो) मोह रहित तथा तत्त्व के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता (सजम) सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाले (अज्जवे गुणे) आर्जवता आदि गुणो से सयुक्त तथा (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रया) रत रहने वाले (ते) पुर्वोक्त अठारह स्थानो का यथावत् पालन करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि (पुरेकडाइ) पहले किए हुए (पावाइ) पापकर्मों को (धुणति) क्षय कर देते हैं और (णवाइ) नवीन (पावाइ)

पापकर्मों का (ण करेति) बंध नही करते, इस प्रकार वे मुनि (अप्पाण) अपनी आत्मा मे रहे हुए कषायादि मल को (खवेति) सर्वथा क्षय कर देते है ॥६८॥

सओवसंता अममा अकिंचणा,
सविज्जविज्जाणुगया जसंसिणो ।
उउप्पसण्णे विमले व चंदिमा,
सिद्धिं विमाणाइं उवेंति ताइणो ॥६९॥

अन्वयार्थ—(सओवसता) सदा उपशात (अममा) मोह ममता रहित (अकिंचणा) निष्परिग्रही (सविज्जविज्जाणुगया) आध्यात्मिक विद्या का अनुसरण करने वाले (जससिणा) यशस्वी तथा (उउप्पसण्णे) शरद् ऋतु के स्वच्छ (चदिमा) चन्द्रमा के (इव) समान (विमला) निर्मल मुनि (सिद्धि) कर्मों का सर्वथा क्षय कर के सिद्ध गति को (उवेति) प्राप्त होते हैं अथवा कुछ कर्म बाकी रहने पर (विमाणाइ) वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते हैं ॥६९॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

'सुवाक्यशुद्धि' नामक सातवाँ अध्ययन

चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं ।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो ण भासिज्ज सव्वसो ।१।

अन्वयार्थ—(पण्णव) बुद्धिमान् साधु (चउण्ह) सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार इन चार (भासाण) भाषाओ के स्वरूप को (खलु) भली प्रकार (परिसखाय) जान कर (दुण्ह) सत्य और व्यवहार, इन दो भाषाओ का (विणय) विवेक पूर्वक उपयोग करना (सिक्खे) सीखे (तु) और (दो) असत्य और मिश्र इन दो भाषाओ को (सव्वसो) सभी प्रकार से (ण भासिज्ज) नही बोले ॥१॥

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा ।
जा य बुद्धेहिं णाइण्णा, ण तं भासिज्ज पण्णव ॥२॥

अन्वयार्थ—(जाय) जो भाषा (सच्चा) सत्य है, किन्तु (अवत्तव्वा) अप्रिय और अहितकारी होने से बोलने योग्य नही है (य) और (जा) जो भाषा (सच्चामोसा) सत्यमृषा—मिश्र है (य) तथा (जा) जो भाषा (मुसा) मृषा है (त) इन भाषाओ को (पण्णव) बुद्धिमान् साधु (ण भासिज्ज) न बोले क्योकि (बुद्धेहि) तीर्थंकर देवो ने (णाइण्णा) इन भाषाओ को बोलने की आज्ञा नही दी है ॥२॥

असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं ।
समुप्पेहमसदिद्ध, गिरं भासिज्ज पण्णव ॥३॥

अन्वयार्थ—(पण्णव) बुद्धिमान् साधु (अणवज्जे) निर्वद्य पाप रहित (अकक्कस) कर्कशता रहित मधुर (च) और (असदिद्ध) सन्देह रहित स्पष्ट (असच्चमोस) असत्यामृषा—व्यवहार भाषा और (सच्च) सत्य (गिर) भाषा को (समुप्पेह) भली प्रकार विचार कर विवेकपूर्वक (भासिज्ज) बोले ॥

एयं च अट्ठमण्णं वा, जं तु णामेइ सासयं ।
स भासं सच्चमोस पि,तं पि धीरो विवज्जए ॥४॥

अन्वयार्थ—(एय च) सावद्य और कर्कशता युक्त (अट्ठ) अर्थ का (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार के दूसरे अर्थ का प्रतिपादन करने वाली (ज तु) जो भाषा (सासय) शाश्वत सुख की (णामेइ) विघातक है अर्थात् जिस भाषा के बोलने से मोक्ष प्राप्ति मे बाधा पहुँचती है, चाहे वह (सच्चमोस भास) सत्यामृषा—मिश्र भाषा हो अथवा (अपि—च) सत्य भाषा हो (त पि) उसे (स) सत्य व्रतधारी (धीरो) बुद्धिमान् साधु (विवज्जए) वर्ज दे अर्थात् ऐसी भाषा न बोले ॥४॥

वितहं पि तहा मुत्ति, जं गिरं भासए णरो ।
तम्हा सो पुट्ठो पावेण,किं पुणं जो मुसं वए ॥५॥

अन्वयार्थ—(णरो) जो मनुष्य (तहामुत्ति पि) बाह्य वेश के अनुसार अर्थात् स्त्री वेषधारी पुरुष को स्त्री एव पुरुषवेश

वाली स्त्री को पुरुष कहने रूप (ज) जो (वितह) असत्य (गिर) भाषा (भासए) बोलता है (तम्हा) इससे (सो) वह पुरुष (पावेण) पाप से (पुट्ठो) स्पृष्ठ होता है अर्थात् पाप का भागी होता है तो (पुण) फिर (जो) जो व्यक्ति (मुस) साक्षात् झूंठ (वए) बोलता है उसका तो (कि) कहना ही क्या ? अर्थात् उसके तो पापकर्म का बंध अवश्य होता है ॥५॥

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ।६।
एवमाइ उ जा भासा, एसकालम्मि संकिया ।
संपयाइयमट्ठे वा, तं पि धीरो विवज्जए ॥७॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (गच्छामो) कल हम यहाँ से अवश्य चले जावेगे (वक्खामो) अमुक बात हम उसे अवश्य कह देंगे, या कल हम यहाँ पर अवश्य व्याख्यान देंगे (वा) अथवा (णे) हमारा (अमुग) अमुक कार्य (भविस्सइ) अवश्य हो जायगा (वा) अथवा (अह) मैं (ण) उस कार्य को (करिस्सामि) अवश्य कर दूंगा (वा) अथवा (एसो) यह व्यक्ति (ण) उस कार्य को (करिस्सइ)अवश्य कर देगा। (एवमाइ) इस प्रकार की (जा उ) जो (भासा) भाषा (एसकालम्मि) भविष्यत् काल मे (सकिया) सशय युक्त हो (वा) अथवा (सपयाइयमट्ठे) इसी प्रकार की जो भाषा वर्त्तमान और अतीत काल के विषय मे सशय युक्त हो (तपि)

(त पि) उसे (धीरो) धैर्यवान् साधु (विवज्जए) बर्जे अर्थात् निश्चयकारी भाषा न बोले ॥६-७॥

अइयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
जमट्ठं तु ण जाणिज्जा, एवमेयं ति नो वए ॥८॥

अन्वयार्थ—(अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणगाए) भविष्यत् (कालम्यि) काल सम्बन्धी (ज) जिस (अटठ) अर्थ—वस्तु को (ण जाणिज्जा) भली प्रकार न जानता हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेयति) यह वस्तु ऐसी ही है इस प्रकार निश्चयात्मक भापा (णो वए) साधु नही बोले ॥८॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति णो तए ॥९॥

अन्वयार्थ—(अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत् (कालम्मि) काल मे (जत्थ) जिस वस्तु के विषय मे (सका) सशय (भवे) हो (तु) तो (त) उस वस्तु के विषय मे (एवमेय) यह ऐसा ही है (ति) इस प्रकार निश्चयात्मक भापा (णो वए) साधु नही बोले ॥९॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
णिस्संकियं भवे ज तु, एवमेवत्ति णिद्दिसे ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अईयम्मि) अतीतकाल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत् (कालम्मि) काल में

(ज) जो वस्तु (णिस्सकिय) शका रहित (भवे) हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेय) यह ऐसा है (ति) इस प्रकार साधु (णिद्दिसे) निरवद्य भाषा मे भाषण कर सकता है ॥१०॥

तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा वि ण वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ।११।

अन्वयार्थ—(तहेव) शकित भाषा के समान (फरुसा) कठोर (भासा) भाषा भी (गुरुभूओवघाइणी) वहुत प्राणियो के प्राणो का नाश करने वाली होती है अतः (सा) इस प्रकार की भाषा (सच्चा वि) सत्य हो तो भी साधु को (ण) नही (वत्तव्वा) बोलनी चाहिए (जओ) क्योकि इससे (पावस्स) पाप-कर्म का (आगमो) वन्ध होता है ॥११॥

तहेव काणं काणेत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा ।
वाहियं वा वि रोगित्ति,तेणं चोरत्ति णो वए ।१२।

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (काण) काणे को (काणत्ति) काणा (वा) अथवा (पडग) नपुसक को (पडगत्ति) नपुसक (वा वि) तथा (वाहिय) रोगी को (रोगित्ति) रोगी और (तेणं) चोर को (चोर त्ति) चोर (णो) न (वए) कहे अर्थात् दूसरो को दु ख पहुँचाने वाली सत्य-भाषा भी साधु को नही बोलनी चाहिए ॥१२॥

एएण अण्णेण अट्ठेणं, परो जेणुवहम्मइ ।
आयारभावदोसण्णू, ण तं भासिज्ज पण्णवं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(आयारभावदोसण्णू) आचार एवं भाव के दोषो को जानने वाला (पण्णव) विवेकी साधु (एएण) उपरोक्त (अट्ठेण) अर्थ को बतलाने वाली अथवा (अण्णेण) अन्य किसी दूसरे प्रकार की भाषा (जेण) जिससे (परो) दूसरे प्राणी को (उवहम्मइ) पीडा पहुँचे (तं) ऐसी पर-पीडाकारी भाषा (ण भासिज्ज) नही बोले ॥१३॥

तहेव होले गोलित्ति, साणे वा वसुलित्ति य ।
दमए दुहए वा वि, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (पण्णव) बुद्धिमान् साधु (होले) रे मूर्ख ! (गोलित्ति) रे लपट (वा) तथा (साणो) रे कुत्ते ! (य) और (वसुलित्ति) रे दुराचारिन् (वा वि) अथवा (दमए) रे कगाल ! (दुहए) रे अभागे ! इत्यादि (णेव भासिज्ज) कठोर शब्दो का प्रयोग कदापि नही करे ॥१४॥

अज्जिए पज्जिए वा वि, अम्मो माउसियत्ति य ।
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति, धूए णत्तुणिए त्ति य ।१५।

हले हल्लित्ति अण्णित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि ।
होले गोले वसुलित्ति, इत्थियं नेवमालवे ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अज्जिए) हे दादी ! या हे नानी ! (वा वि) अथवा (पज्जिए) हे परदादी ! या हे परनानी ! (अम्मो) हे माँ ! (य) और (माउसियत्ति) हे मौसी ! (पिउस्सिए)

हे भूवा ! (भायणिज्ज) हे भानजी ! (धूए) हे पुत्री ! (य) और (णत्तुणिएत्ति) हे दोहिति ! या हे पोती ! (हले हलित्ति) हे सखी ! (अण्णिति) हे अन्ने ! (भट्टे) ! हे भट्टे ! (सामिणि) हे स्वामिनि ! (गोमिणि) हे गोमिनि—ग्वालिन् ! (होले) हे मूर्ख ! (गोले) हे गोली ! (वसुलित्ति) हे दुराचारिणी ! (एव) इत्यादि निन्दित सबोधनो से सबोधित कर के (इत्थिय) किसी भी स्त्री को साधु (ण आलवे) नही बोलावे ॥१५–१६॥

णामधिज्जेण णं बूआ, इत्थीगोत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ, आलवेज्ज लवेज्ज वा ॥१७॥

अन्वयार्थ—(ण) उस स्त्री का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (इत्थीगोत्तेण) उस स्त्री का जो गोत्र हो उस गोत्र से सबोधित कर के (बूआ) बोले तथा (जहारिह) यथा-योग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश कर के (आलवेज्ज) एक बार बोले (वा) अथवा (लवेज्ज) बार-बार बोले ॥१७॥

अज्जए पज्जए वा वि, वप्पो चुल्लपिउत्ति य ।
माउला भाइणिज्जत्ति, पुत्ते णत्तुणियत्ति य ॥१८॥
हे भो हलित्ति अण्णत्ति, भट्टे सामिय गोमिए ।
होल गोल वसुलित्ति, पुरिसं णेवमालवे ॥१९॥

अन्वयार्थ—(अज्जए) हे दादा या हे नाना ! (वा वि) अथवा (पज्जए) हे परदादा या हे परनाना ! (वप्पो)

हे पिता ! (य) और (चुल्लपिउ त्ति) हे चाचा ! (माउलो) हे मामा ! (भाइणिज्ज त्ति) हे भानजी ! (पुत्ते) हे पुत्र ! (य) और (णत्तुणिअ त्ति) हे दोहित्र ! हे पौत्र ! (हे हलित्ति) रे सखे ! (भो अण्णित्ति) रे अन्न ! (भट्टे) रे भट्ट ! (सामिअ) हे स्वामिन् ! (गोमिअ) रे गोमिग्—गाय वाले (होल) रे मूर्ख ! (गोल) रे लपट ! (वसुलित्ति) रे दुराचारिन् ! (एव) इत्यादि निदिन्त एव अपमान-जनक सम्बोधनो से (पुरिस) किसी भी पुरुष को सम्बोधित नही करे ॥१८-१९॥

णामधिज्जेण णं बूया, पुरिसगुत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ,आलविज्ज लविज्ज वा ॥२०॥

अन्वयार्थ—(ण) उस पुरुष का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (पुरिसगुत्तेण) उस पुरुष का जो गोत्र हो उस गोत्र से सम्बोधित कर (बूया) बोले (वा) अथवा (जहारिह) यथा-योग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश कर के (आलविज्ज) एकबार बोले अथवा आवश्यकतानुसार (लविज्ज) बार-बार बोले ॥

पंचिदियाण पाणाणं, एस इत्थी अयं पुमं ।
जाव णं ण वियाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ।२१।

अन्वयार्थ—(पंचिदियाण) पचेन्द्रिय (पाणाण) प्राणी गाय, भैस, घोडा आदि के विषय मे (जाव) जब तक (एस) यह (इत्थी) गाय, भैस, घोडी आदि है, अथवा (अय) यह

(पुम) वैल, भैसा, घोडा आदि है (ण) इस प्रकार स्त्रीलिंग पुँल्लिग आदि का ठीक रूप से (ण वियाणिज्जा) निश्चय न हो जाय (ताव) तब तक (जाइ) यह गो जाति है, या अश्व जाति है, (त्ति) इस प्रकार (आलवे) साधु बोले ॥२१॥

तहेव माणुसं पसुं, पक्खि वा वि सरीसवं ।
थूले पमेइले वज्झे, पायमित्ति य णो वए ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (माणुस) मनुष्य (पसु) पशु (पक्खि) पक्षी (वा वि) अथवा (सरीसव) सर्प आदि देख कर (थूले) यह बडा मोटा-ताजा है (पमेइले) यह बड़ी तोंद वाला है, इसके शरीर मे चर्बी बहुत वढी हुई है (वज्झे) यह शस्त्र द्वारा मार देने योग्य है (य) अथवा (पाय) अग्नि मे पकाने योग्य है (इत्ति) इस प्रकार पर-पीडाकारी वचन साधु को (णो) नही (वए) बोलना चाहिए ॥२२॥

परिवूढत्ति णं बूया, बूया उवचियत्ति य ।
संजाए पीणिए वा वि, महाकायत्ति आलवे ॥२३॥

अन्वयार्थ—(ण) यदि स्त्री पुरुष के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (परिवूढ) यह सामर्थ्यवान् है अथवा यह सब प्रकार से वृद्ध है (त्ति) इस प्रकार (बूया) बोलना चाहिए (य) अथवा (उवचिय) यह स्वस्थ एव पुष्ट शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोलना चाहिए (वा वि) अथवा (सजाए) यह पूर्ण अग-उपाग वाला है (पीणिए) यह प्रसन्न एव निश्चित है तथा (महाकाय) यह बड़े शरीर वाला है

(त्ति) इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर (आलवे) साधु बोल सकता है ॥२३॥

तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा गोरहगत्ति य ।
वाहिमा रहजोगित्ति, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥२४॥

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार मनुष्य आदि के विषय मे सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए,उसी प्रकार पशुओ के लिए भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए यथा (गाओ) ये गायें (दुज्झाओ) दुहने योग्य हैं अर्थात् इन गायो का दूध निकालने का ससय हो गया है (य) तथा (गोरहगत्ति) ये बछड़े अब (दम्मा) दमन करने योग्य हैं अर्थात् नाथने योग्य हैं अथवा वधिया—खसी करने के लायक हैं (वाहिमा) हलादि मे जोतने योग्य है और (रहजोगित्ति) रथ मे जोतने योग्य हैं (एवं) इस प्रकार (पण्णव) वुद्धिमान् साधु (ण भासिज्ज) सावद्य भाषा नही बोले ॥२४॥

जुवं गवित्ति णं बूया, धेणुं रसदयत्ति य ।
रहस्से महल्लए वा वि, वए संवहणित्ति य ॥२५॥

अन्वयार्थ—(ण) गाय-वैल आदि के विषय मे यदि बोलने की आवश्यकता हो तो (गवित्ति) यह वैल (जुवं) जवान है (य) और (धेणु) यह गाय (रसदय) दूधारु (त्ति) इस प्रकार (बूया) बोले (वा वि) अथवा (रहस्से) यह वछड़ा छोटा है (महल्लए) यह वैल वडा है (य) तथा (सवह-णित्ति) यह वैल धोरी है अर्थात् उठाये हुए भार को पार

पहुँचाने वाला है। इस प्रकार (वए) निर्वद्य वचन बोल सकता है ॥२५॥

तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, णेव भासिज्ज पण्णवं ॥२६॥
अलं पासायखंभाण, तोरणाणं गिहाण य।
फलिहग्गलणावाणं अलं उदगदोणिणं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार पशु आदि के लिए सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए, उसी प्रकार वृक्ष आदि के विषय मे भी सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए (उज्जाण) बगीचे (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वन के अन्दर (गतु) जा कर वहाँ (महल्ल) विशाल (रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देख कर (पण्णव) बुद्धिमान् साधु (एव) इस प्रकार (ण भासिज्ज) नही बोले कि ये वृक्ष (पासायखभाण) महल के खभो के लिए (तोरणाण) नगर के दरवाजे बनाने के लिए (य) और (गिहाण) झोपडी आदि बनाने के लिए (अल) योग्य हैं तथा (फलिहऽग्गलणावाण) परिघ—भोगल, अर्गला और नाव बनाने के लिए तथा (उदगदोणिण) जलपात्र अथवा छोटी नौका बनाने के लिये (अल) योग्य है ॥२६-२७॥

पीढए चंगबेरे य, णंगले मइयं सिया।
जंतलट्ठी व णाभी वा, गडिया व अलं सिय

आसणं सयणं जाणं, हुज्जा वा किंचुवस्सए ।
भूओवघाइणिं भासं, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥२९॥

अन्वयार्थ—ये वृक्ष (पीढए) बाजोठ (चगबेरे) कठौती (णंगले) हल की मूठ (य) और (मइयं) जोते हुए खेत को बराबर करने के लिये फिराये जाने वाले मेडे के लिए (अलं) योग्य (सिया) है (व) अथवा (जतलट्ठी) कोल्हू आदि यत्रों की लाठ (वा) अथवा (णाभी) गाडी के पहिये की नाभी (व) अथवा (गडिया) सुनार की एरण रखने का लकड़ी का का ढाचा बनाने के लिए (अल) योग्य (सिया) हैं (आसण) कुर्सी-पाटा आदि बैठने का आसन (सयण) सोने के लिए बडा पाटा या खाट (वा) अथवा (जाण) रथ एवं पालकी (किंच) और (उवस्सए) उपाश्रय के किंवाड़ आदि बनाने के लिए (हुज्जा) योग्य है (एव) इस प्रकार (भूओवघाइणिं) एकेद्रियादि प्राणियो की घात करने वाली एवं पर-पीडाकारी (भास) भाषा (पण्णवं) बुद्धिमान् साधु (ण भासिज्ज) कदापि नहीं बोले ॥२८-२९॥

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य ।
रुक्खा महल्ल पेहाए, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥३०॥
जाइमंता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया ।
पयायसाला विडिमा, वए दरिसणित्ति य ॥३१॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (उज्जाण) उद्यान

(पव्वयाणि) पर्वत (य) और वणाणि) वनादि के अन्दर (गतु) गया हुआ (पण्णव) वुद्धिमान् साधु (महल्ल) वडे-वडे (रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देख कर यदि उनके विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (एव) इस प्रकार (भासिज्ज-वए) निरवद्य वचन कह सकता है कि (इमे) ये (रुक्खा) वृक्ष (जाइमता) उत्तम जाति के (दीहवट्टा) वहुत लम्वे गोलाकार (महालया) वहुत विस्तार वाले (पयायसाला) वडी वडी शाखा (य) और (विडिमा) प्रति शाखाओ से युक्त हैं अतएव (दरिसणित्ति) सुन्दर एव दर्शनीय है ॥३०-३१॥

तहा फलाइं पक्काइ, पायखज्जाइ णो वए ।
वेलोइयाइं टालाइं, वेहिमाइत्ति णो वए ॥३२॥

अन्वयार्थ—(तहा) जिस प्रकार वृक्षो के विषय मे सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए, उसी प्रकार फलो के विषय मे भी सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए, जैसे कि (फलाइ) ये फल (पक्काइ) स्वत पक कर तैयार हो गये हैं तथा (पायखज्जाइ) पका कर खाने योग्य हैं (नो वए) इस प्रकार साधु नही बोले और (वेलोइयाइ) ये फल अधिक पके हुए हैं, इसलिए अभी खाने योग्य हैं (टालाइ) अथवा बहुत कोमल है एव अभी तक इनमे गुठली भी नही पडी है इसलिए (वेहिमाइ) चाकू से काट कर दो टुकडे करने योग्य हैं (त्ति) इसी प्रकार भी (णो वए) नही बोले ॥३२॥

असंथडा इमे अंबा, बहुणिव्वडिमा फला।
वइज्ज बहुसभूया, भूयरूवित्ति वा पुणो ॥३३॥

अन्वयार्थ—प्रयोजन होने पर साधु (वइज्ज) इस प्रकार निरवद्य भाषा बोल सकता है कि (इमे) ये (अबा) आम्रवृक्ष (असथडा) फलो का भार उठाने मे असमर्थ हैं अथवा इन आम्रवृक्षो मे बहुत-से फल लगे है, जिनके बोझ से झुक कर ये नम्र बन गये हैं (वहुणिव्वडिमाफला) ये वृक्ष बहुत से फलो के गुच्छो से युक्त हैं (वा) अथवा (बहुसभूया) इस बार फल बहुत अधिक लगे हैं (पुणो) अथवा (भूयारूवत्ति) बहुत फल लगने से ये वृक्ष बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं ॥३३॥

तहेवोसहिओ पक्काओ, णीलियाओ छवीइ य।
लाइमा भज्जिमाउत्ति, पिहुखज्जत्ति णो वए।३४।

अन्वयार्थ— (तहेव) इसी प्रकार (ओसहिओ) ये शालि गेहु आदि धान्य (पक्काओ) पक चुके हैं अत (लाइमा) अब ये काट लेने योग्य हैं। (य) तथा (नीलियाओ छवीइ) ये फलियाँ नीली एव कोमल है अत. (भज्जिमाउत्ति) कढाही मे डाल कर भूनने योग्य हैं अथवा (पिहुखज्ज) होला वना कर अग्नि मे सेक कर खाने योग्य है (त्ति) इस प्रकार साधु (णो वए) नही बोले ॥३४॥

रूढा बहुसंभूया, थिरा ओसढा वि य।
गब्भियाओ पसूयाओ, संसाराउत्ति आलवे ॥३५॥

अन्वयार्थ—यदि धान्यादि के विषय मे वोलने की आवश्यकता हो तो साधु (आनवे) इस प्रकार निरवद्य वचन वोल सकता है कि (रूढा) इन शालि गेहू आदि धान्यो के अकुरे निकल आये है (वहुसमूया) वहुत अकुर फूट निकले है तथा ये पत्तो से युक्त हो गये है (य) तथा (थिरा) स्थिर हो गये हैं (वि) और (आसढा) धान्य वढ कर ऊँचे आ गये हैं (गब्भियाओ) अभी तक इनमे सिट्टे नही निकले हैं (पसूयाओ) अव इनमे प्राय सिट्टे निकले आये हैं (ससाराउत्ति) इन सिट्टो मे दाने पड गये है ॥२५॥

तहेव सखडिं णच्चा, किच्चं कज्जं ति णो वए।
तेणग वा वि वज्झित्ति,सुतित्थित्ति य आवगा।३६।

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (सखडि) गृहस्थ के घर जीमनवार को (णच्चा) जान कर (किच्च) यह कार्य (कज्ज) करना ही चाहिए (वा वि) अथवा (तेणग) चोर को देख कर (वज्झित्ति) यह मार देने योग्य है (य) और (आवगा) नदियो को देख कर (सुतित्थित्ति) ये भली प्रकार से तैरने योग्य हैं अथवा जलक्रीडा करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार (णोवए) साधु नही वोले ॥३६॥

संखडिं संखडिं बूया, पणियट्ठत्ति तेणगं।
बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाणं वियागरे ॥३७॥

अन्वयार्थ—जीमनवार आदि के विषय मे वोलना पडे तो (सखडि) जीमनवार को (सखडि) जीमनवार—वहुत जीवो का

उपपात पूर्वक होने वाला आरम्भ-समारम्भ (वूआ) कहे (तेणग) चोर के विषय मे (पणियट्ठ) अपने प्राणो को कष्ट मे डाल कर भी धन के लिए यह चोरी करने वाला है (त्ति) इस प्रकार कहे तथा (आवगाण) इन नदियो के (तित्थाणि) किनारे (बहुसमाणि) बहुत समान है। इस प्रकार (वियागरे) निरवद्य भाषा बोले ॥३७॥

तहा णईओ पुण्णाओ, कायतिज्जत्ति णो वए ।
णावाहिं तरिमाउ त्ति, पाणिपिज्ज त्ति णो वए ।३८।

अन्वयार्थ—(तहा) इसी प्रकार (णईओ) वे नदियाँ (पुण्णाओ) जल से पूर्ण भरी हुई है अत. (कायत्तिज्ज) भुजाओं से तैरने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार (णो वए) साधु नही बोले अथवा (णावाहिं) ये नदियाँ नावो से (तारिमाउ) पार करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार तथा (पाणिपिज्ज) प्राणी इसके तट पर से ही सुखपूर्वक पानी पी सकते हैं (त्ति) इस प्रकार भी (णो वए) नही बोले ॥३८॥

बहुवाहडा अगाहा, बहुसलिलुप्पिलोदगा ।
बहुवित्थडोदगा यावि, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥३९॥

अन्वयार्थ—यदि कदाचित् इन के विषय मे बोलना ही पडे तो (वहुवाहडा) ये नदियाँ जल से लबालब भरी हुई हैं (अगाहा) ये नदियाँ अगाध जल वाली हैं (वहुसलिलुप्पि-लोदगा) इन नदियो का जल तरगो से वहुत उछल रहा है (यावि) और बहु (वित्थडोवगा) इन नदियो का जल वहुत

विस्तारपूर्वक वह रहा है (एव) इस प्रकार (पण्णव) बुद्धिमान् साधु (भासिज्ज) निरवद्य भाषा बोले ॥३९॥

तहेव सावज्जं जोगं, परस्सट्ठा य णिट्ठियं ।
कीरमाणंति वा णच्चा, सावज्जं ण लवे मुणी ।४०।

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (परस्सट्ठा) दूसरे के लिए (निट्ठिय) भूत काल मे किये गये (अ) और (कीर-माण) वर्तमान काल मे किये जाने वाले (वा) अथवा भविष्यत् काल मे किये जाने वाले (सावज्ज) पापयुक्त (जोग) योग—कार्य को (नच्चा) जान कर (मुणी) मुनि (त्ति) यह कार्य अच्छा किया, इस प्रकार (सावज्ज) सावद्य भाषा (न लवे) नही बोले ॥४०॥

सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुछिण्णे सुहडे मडे ।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज वज्जए मुणी ॥४१॥

अन्वयार्थ—(सुकडित्ति) यह प्रीतिभोज आदि कार्य अच्छा किया अथवा यह सभाभवन आदि अच्छा बनवाया (सुपक्कित्ति) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल अच्छा पकाया (सुछिण्णे) यह भयकर वन काट दिया, सो अच्छा किया (सुहडे) इस कजूस का धन चोर चूरा ले गये सो अच्छा हुआ (मडे) वह दुष्ट मर गया सो अच्छा हो (सुनिट्ठिए) इस धनाभिमानी का धन नष्ट हो गया सो बहुत ठीक हुआ (सुल-ट्ठित्ति) यह कन्या हृष्ट-पुष्ट अवयव वाली नवयौवना एव सुन्दर है, अत विवाह करने योग्य है। इस प्रकार (मुणी) मुनि

(सावज्ज) सावद्य वचन (वज्जए) वर्ज दे—नही बोले, किन्तु इस प्रकार निरवद्य वचन वोले कि (सुकडित्ति) इस मुनि ने वृद्ध मुनियो की वैयावच्च एव सेवा-शुश्रूपा अच्छी की (सुपक्कित्ति) इस मुनि ने ब्रह्मचर्य व्रत का अच्छा पालन किया है (सुच्छिण्णे) अमुक मुनि ने सासारिक स्नेह-वन्धनो को अच्छी तरह काट दिया है (सुहडे) यह मुनि उपसर्ग के समय भी ध्यान मे खूब दृढ रहा अथवा इस तत्त्वज्ञ मुनि ने उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान दूर कर दिया (मडे) अमुक मुनि को अच्छा पण्डितमरण प्राप्त हुआ (सुणिट्ठिए) अच्छा हुआ इस अप्रमादी मुनि के सभी कर्मो का नाश हो गया (सुलट्ठित्ति) अमुक मुनि की क्रिया वहुत सुन्दर है—इस प्रकार साधु को निरवद्य भाषा बोलनी चाहिए ॥४१॥

पयत्तपक्कत्ति व पक्कमालवे,
पयत्तछिण्णत्ति व छिण्णमालवे ।
पयत्तलट्ठित्ति व कम्महेउयं,
पहारगाढत्ति व गाढमालवे ॥४२॥

अन्वयार्थ—यदि कदाचित् इनके विपय मे बोलना पडे, तो (पक्क) पकाये हुए शतपाक-सहस्रपाक तैलादि पदार्थों के विपय मे (पयत्तपक्कत्ति) यह वडे प्रयत्न से आरम्भपूर्वक पकाया गया है, इस प्रकार (आलवे) बोले (व) और (पयत्तलट्ठित्ति) कन्या के विपय मे यह कन्या सभालपूर्वक लालन-पालन की हुई है अथवा यदि कन्या दीक्षा ले तो सयम की क्रियाओ का

सुन्दर रीति से पालन कर सकता है, इस प्रकार बोले (वा) अथवा (समरुड्ड) संग्रामादि [illegible] के [illegible] ये शृंगारादि क्रियाएँ सम्बन्ध का कारण है (वा) अथवा (गाढ़ पहारगाढ़ति) यह घाव बहुत गहरा है, इस प्रकार (भासेज्ज) निरवद्य वचन कहे ॥४२॥

सव्वुक्कस परग्घ वा, अउल णत्थि एरिस ।
अविक्कियमवत्तव्वं, अचियत्तं चेव णो वए ॥४३॥

अन्वयार्थ—किसी वस्तु के साथ वार्तालाप करने का प्रसंग आजाय तो (सव्वुक्कस) यह वस्तु सब से उत्कृष्ट है (वा) अथवा (परग्घ) अधिक मूल्य वाली है (अउल) अनुपम है (एरिस) इसके समान दूसरी कोई वस्तु (णत्थि) नहीं है (अविक्कियं) यह वस्तु अभी बेचने योग्य नहीं है (अवत्तव्व) इसमें इतने गुण हैं कि वे कहे नहीं जा सकते (चेव) और (अचियत्त) यह वस्तु बहुत गन्दी है (णो वए) इस प्रकार साधु नहीं कहे ॥४३॥

सव्वमेय वइस्सामि, सव्वमेय त्ति णो वए ।
अणुवीइ सव्व सव्वत्थ, एवं भासिज्ज पण्णव ।४४।

अन्वयार्थ—(एय) तुम्हारा कहा हुआ यह (सव्व) सब सन्देश (वइस्सामि) मैं उनसे ठीक इसी प्रकार कह दूंगा तथा (एय) उनका सारा कथन (एव) ऐसा ही है (त्ति) इस प्रकार (पण्णव) विवेकी साधु (णो वए) नहीं बोले, किन्तु (सव्वत्थ) सभी जगह (सव्व) सब बात (अणुवीइ) बहुत सोच विचार

कर जिस प्रकार मृषावाद का दोष न लगे, उसी प्रकार से (भासिज्ज) बोले ॥४४॥

सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकिज्जं किज्जमेव वा ।
इमं गिण्ह इम मुंच, पणीय णो वियागरे ॥४५॥

अन्वयार्थ—(सुक्कीय) तुमने अमुक माल क्रय कर लिया सो अच्छा किया (वा) अथवा (सुविक्कीय) तुमने अमुक बेच दिया सो ठीक किया (अकिज्ज) यह वस्तु क्रय करने योग्य नही है (वा) अथवा (किज्जमेव) यह वस्तु लेने योग्य है (इय) यह (पणीय) वस्तु—किराना इस समय (गिण्ह) ले लो, इसमे लाभ होगा (इम) इस समय यह वस्तु (मुच) बेच डालो, आगे जा कर इसमे हानि होगी (णो वियागरे) इस प्रकार साधु नही कहे ॥४५॥

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा ।
पणियट्ठे समुप्पण्णे, अणवज्ज वियागरे ॥४६॥

अन्वयार्थ—(अप्पग्घे) अल्प-मूल्य वाले (वा) अथवा (महग्घे वा) वहु-मूल्य वाले पदार्थ को (कए वा) क्रय करने के विषय मे (वि वा) अथवा (विक्कए) बेचने के विषय मे यदि कभी (पणिअट्ठे) व्यापार सम्वन्धी प्रसग (समुप्पण्णे) उपस्थित हो जाय तो साधु (अणवज्ज) निरवद्य वचन (वियागरे) बोले अर्थात् ऐसा कहे कि व्यापार-वाणिज्य के विषय मे बोलने का साधुओ को कोई प्रयोजन नही है ॥४६॥

तहेवासंजयं धीरो, आस एहि करेहि वा ।
सयं चिट्ठ वयाहित्ति, णेव भासिज्ज पण्णवं ।।४८।।

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (धीरो) धैर्यवान् और (पण्णव) बुद्धिमान् साधु (असजय) गृहस्थ के प्रति (आस) यहाँ बैठो (एहि) इधर आओ (वा) अथवा (करेहि) यह काम करो (सय) यहाँ सो जाओ (चिट्ठ) यहाँ खडे रहो (वयाहित्ति) यहाँ से चले जाओ (एव) इस प्रकार (ण भासिज्ज) नही बोले ।।४८।।

बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चति साहुणो ।
ण लवे आसाहु साहुत्ति, साहु साहुत्ति आलवे ।४८।

अन्वयार्थ—(लोए) लोक मे (इमे) ये (बहवे) बहुत से (असाहू) असाधु भी (साहुणो) साधु (वुच्चत्ति) कहे जाते हैं, किन्तु बुद्धिमान् साधु (असाहु) असाधु को (साहु त्ति) साधु (ण लवे) न कहे (साहु) साधु को ही (साहु त्ति) साधु (आलवे) कहे ।।४८।।

णाणदंसणसंपण्णं, संजमे य तवे रयं ।
एव गुणसमाउत्तं, सजयं साहुमालवे ।।४९।।

अन्वयार्थ—(णाणदसणसपण्ण) सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन से युक्त (सजमे) सत्रह प्रकार के सयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रय) अनुरक्त (एव) इस प्रकार के (गुणसमाउत्त) गुणो से युक्त (सजयं) साधु को ही (साहु)

साधु (आलवे) कहना चाहिए ॥४९॥

देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे ।
अमुयाणं जओ होउ,मा वा होउत्ति णो वए ॥५०॥

अन्वयार्थ—(देवाण) देवताओ के (च) तथा (मणुयाण) मनुष्यो के (च) और (तिरियाण) तिर्यंचो के—पशु-पक्षियो के (वुग्गहे) पारम्परिक युद्ध मे (अमुयाण) अमुक पक्ष की (जओ) जीत (होउ) हो (वा) और (मा होउ) अमुक पक्ष की जीत न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु नही बोले ॥

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा ।
कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउत्ति णो वए ।५१।

अन्वयार्थ—शीत तापादि से पीडित हो कर साधु (वाओ) वायु (च) और (वुट्ठ) वृष्टि (सीउण्ह) ठड और गर्मी (खेम) रोगादि की शान्ति (धाय) धान्य का अच्छी फसल (सिव ति) सुख शान्ति (एयाणि) ये सब (कया णु) कब (हुज्ज) होगे ? (वा) अथवा (मा होउ) ये सब बाते न हो (त्ति) इस प्रकार (णो वए) न कहे ॥५१॥

तहेव मेहं व णहं व माणवं,
ण देव देवत्ति गिरं वइज्जा ।
समुच्छिए उण्णए वा पओए,
वइज्ज वा वुट्ठ बलाहइत्ति ॥५२॥

अंतलिक्खत्ति णं बूया, गुज्झाणुचरियत्ति य ।
रिद्धिमतं णर दिस्स, रिद्धिमंतत्ति आलवे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (मेह) मेघ को (व) अथवा (णह) आकाश को (व) अथवा (माणव) राजा आदि को देख कर (देव) यह देव है (त्ति) इस प्रकार का (गिर ण वइज्जा) वचन साधु न बोले, किन्तु यदि प्रयोजन पडे तो मेघ के प्रति (समुच्छिए) यह मेघ ऊँचा चढ रहा है (वा) अथवा (उण्णए) यह मेघ उन्नत है (वा) अथवा (पओए) यह मेघ जल से भरा हुआ है अथवा (वुट्ठ वलाहय) यह मेघ वर्ष चुका है (त्ति) इस प्रकार अदूषित वचन (वइज्ज) कहे और (ण) आकाश के प्रति (अतलिक्ख) यह अन्तरिक्ष है (य) अथवा (गुज्झाणुचरिय) देवो के आने जाने का मार्ग है (त्ति) इस प्रकार (बूया) कहे (रिद्धिमत) किसी सम्पत्ति-शाली (णर) मनुष्य को (दिस्स) देख कर (रिद्धिमत) यह सम्पत्तिशाली है (ति) इस प्रकार (आलवे) कहे ॥५२–५३॥

तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।
से कोह-लोह-भय-हास माणवो,
ण हासमाणो वि गिरं वइज्जा ॥५४॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (जा) जो (गिरा) भाषा (सावज्जणुमोयणी) सावद्य—पापकर्म का अनुमोदन करने

वाली हो (ओहारिणी) निश्चयकारी हो (य) और (परोव-घाइणी) प्राणियो का उपघात करने वाली एव दूसरो को पीडा पहुंचाने वाली हो (से) ऐसी (गिर) भापा (माणवो) साधु (कोह लोह भय हास) क्रोध लोभ भय और हास्य के वश हो कर (हासमाणो वि) हँसी-मजाक मे भी (ण वइज्जा) नही बोले ॥५४॥

सुवक्कसुद्धि समुपेहिया मुणी,
गिरं च दुट्ठ परिवज्जए सया।
मिय अदुट्ठ अणुवीइ भासए,
सयाण मज्झे लहई पससण ॥५५॥

अन्वयार्थ—(मुणी) जो मुनि (सुवक्कसुद्धि) वाक्य की शुद्धि को (समुपेहिया) भलीभांति समझ कर (दुट्ठ) मृषा-वादादि दोष युक्त (गिर) भाषा को (सया) सदैव (परि-वज्जए) छोड देता है और (अणुवीइ) सोच-विचार कर (मिय) परिमित (च) और (अदुट्ठ) निरवद्य वचन (भासए) बोलता है वह साधु (सयाणमज्झे) सत्पुरुषो के बीच मे (पस-सण) प्रशसा (लहई) प्राप्त करता है ॥५५॥

भासाइ दोसे य गुणे य जाणिया,
तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए,
वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ॥५६॥

अन्वयार्थ—(छसु) छ काय जीवो की (सजए) रक्षा

करने वाला (सामणिए) चारित्र धर्म मे (सया) सदा (जए) उद्यम करने वाला (वुद्धे) वुद्धिमान् साधु (भासाइ) भाषा के (दोसे) दोषो को (य) और (गुणे) गुणो को (जाणिया) जान कर (तीसे) भाषा के (दुट्ठे) दोषो को (सया) सदा (परिवज्जए) त्याग दे (य) और (हिय) सभी प्राणियो के हितकारी (य) तथा (अणुलोमिय) सभी प्राणियो के अनुकूल भाषा (वइज्ज) वोले ॥५६॥

परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए,
चउक्कसायावगए अणिस्सिए ।
स णिद्धुणे धुण्णमल पुरेकड,
आराहए लोगमिण तहा परं ॥ त्ति बेमि ॥५७॥

अन्वयार्थ—(परिक्खभासी) भाषा के गुण दोषो का विचार कर के वोलने वाला (सुसमाहि इदिए) सव इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (चउक्कसायावगए) क्रोधादि चार कषायो से रहित (अणिस्सिए) सासारिक प्रतिवन्धो से मुक्त (से) भाषा-समिति का आराधक मुनि (पुरेकड) पूर्व उपार्जित (धुण्ण-मल) कर्म रूपी मैल को (णिद्धुणे) नष्ट कर के (इण) इस लोक (तहा) तथा (पर लोग) परलोक दोनो की (आराहए) सम्यक् आराधना कर लेता है, अर्थात् सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है ॥५७॥ (त्ति वेमि) पूर्ववत्) ।

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

आचारप्रणिधि नामक आठवाँ अध्ययन

आयारप्पणिहिं लद्धुं, जहा कायव्व भिक्खुणा ।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि—

अन्वयार्थ—हे आयुष्यमन् शिष्य ! (आयारप्पणिहिं) सदाचार के भण्डार स्वरूप साधुत्व को (लद्धु) प्राप्त कर के (भिक्खुणा) साधु को (जहा) जिस प्रकार (कायव्व) आचरण करना चाहिए (त) उसकी विधि (मे) मैं (भे) तुम से (उदाहरिस्सामि) कहूंगा सो तुम (आणुपुव्वि) अनुक्रम से (सुणेह) सावधान हो कर सुनो ॥१॥

पुढविदगअगणिमारुअ, तणरुक्खा सबीयगा ।
तसा य पाणा जीवत्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२॥

अन्वयार्थ—(पुढवि) पृथ्वीकाय (दग) अप्काय (अगणि) तेउकाय (मारुअ) वायुकाय तथा (तणरुक्खस्स वीयगा) तृण वृक्ष और बीज रूप वनस्पतिकाय (य) और (तसा पाणा) त्रस प्राणी ये सब (जीव त्ति) जीव है (इइ) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर स्वामी ने (वुत्त) फरमाया है।

तेसिं अच्छणजोएण, णिच्चं होयव्वयं सिया ।
मणसा कायवक्केणं, एव हवइ संजए ॥३॥

अन्वयार्थ—मुनि को (मणसा) मन (कायवक्केण) वचन और काया से (णिच्च) निरन्तर (तेसिं) पूर्वोक्त छ काय जीवो के साथ (अच्छण जोएण) अहिसा का (होयव्वय सिया) बर्ताव करना चाहिये (एव) एसा करने से ही (सजए) वह मुनि पद के योग्य (हवइ) होता है ॥३॥

पुढवि भित्ति सिलं लेलुं, णेव भिंदे ण संलिहे ।
तिविहेणं करणजोएण, सजए सुसमाहिए ॥४॥

अन्वयार्थ—(सुसमाहिए) चारित्र की आराधना मे साव-धान समाधिवत (सजए) मुनि (पुढवि) सचित्त पृथ्वी (भित्ति) भीत (सिल) शिला (लेलु) और मिट्टी के ढेले को (तिविहेण करणजोएण) तीन करण तीन योग से अर्थात् मन वचन काया द्वारा करना कराना अनुमोदना रूप से (णेव) न तो (भिंदे) भेदे—टुकडे करे और (ण सलिहे) न घिसे अर्थात् उन पर रेखा नही खीचे ॥४॥

सुद्धपुढवी ण णिसीए, ससरक्खम्मि य आसणे ।
पमज्जित्तु णिसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं ॥५॥

अन्वयार्थ—(सुद्धपुढवी) शस्त्र से अपरिणत—सचित्त पृथ्वी पर (य) और (ससरक्खम्मि) सचित्त रज से भरे हुए (आसणे) आसनादि पर (ण णिसीए) मुनि न बैठे। यदि अचित्त भूमि हो तो (जस्स) उसके स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (जाइत्ता) ले कर (पमज्जित्तु) रजोहरण से पूज कर (णीसी-इज्जा) बैठे ॥५॥

सीओदगं ण सेविज्जा, सिलावुट्ठ हिमाणि य।
उसिणोदगं तत्तफासुयं, पडिगाहिज्ज संजए ॥६॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (सीओदग) नदी, कुए, तालाव आदि के सचित्त जल (सिला) ओले—गडे (वुट्ठ) बरसात का जल (य) और (हिमाणि) वर्फ, इन सब का (ण सेविज्जा) सेवन नही करे किन्तु (तत्तफासुय) तप्त प्रासुक (उसिणोदग) उष्ण जल एव प्रासुक धोवन पानी को ही (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे ॥६॥

उदउल्लं अप्पणो कायं, णेव पुंछे ण संलिहे।
समुप्पेह तहाभूयं, णो णं संघट्टए मुणी ॥७॥

अन्वयार्थ—किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर गये हुए मुनि का (अप्पणो) अपना (काय) शरीर (उदउल्ल) यदि कदाचित् बरसात पडने से भीग जाय तो अप्काय के जीवो की रक्षा के लिए (मुणी) मुनि (ण) अपने शरीर को (ण पुछे) न तो वस्त्रादि से पोछे और (णेव सलिहे) न अपने हाथो से देह को मले किन्तु (तहाभूय) अपने शरीर को जल से भीगा हुआ (समुप्पेह) देख कर साधु अपने शरीर का (णो सघटए) सघट्टा—स्पर्श भी नही करे ॥७॥

इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं।
ण उंजिज्जा ण घट्टिज्जा, णो णं णिव्वावए मुणी ॥८॥

अन्वयार्थ—(मुणी) मुनि (इगाल) अगारे को (अगणि)

अग्नि को (अच्चि) ज्वाला सहित अग्नि को (वा) अथवा (सजोइय) अग्नि सहित (अलाय) अधजले काठ को (न उजिज्जा) न अधिक जलावे (न घट्टिज्जा) न सघट्टा करे और (नो) न (ण) उस अगारादि को (णिव्वावए) पानी आदि से वुझावे ॥८॥

तालियटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेणवा ।
ण वीइज्जऽप्पणो कायं,बाहिरं वा वि पुग्गल ॥९॥

अन्वयार्थ—(तालियटेण) ताड वृक्ष के पखे से (पत्तेण) पत्तो से (साहाए) वृक्ष की शाखा से(वा) अथवा(विहुयणेण) पखे से अथवा वस्त्रादि से मुनि (अप्पणो) अपने (काय)शरीर पर (ण वीइज्ज)हवा नही करे (वा वि)इसी प्रकार(वाहिर) वाहरी (पुग्गल) पदार्थो को अर्थात् गर्म दूधादि को ठडा करने के लिए हवा भी नही करे ॥९॥

तणरुक्खं ण छिंदिज्जा, फल मूलं च कस्सई ।
आमगं विविहं बीयं, मणसा वि ण पत्थए ॥१०॥

अन्वयार्थ—साधु (तणरुक्ख) तृण घास वृक्षादि को तथा (कस्सई) किसी वृक्षादि के (फल) फल (च) और (मूल) जड को (न छिंदिज्जा) न काटे तथा (विविह) नाना प्रकार के (आमग) सचित्त (वीय) वीजो को सेवन करने की (मणसा वि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा नही करे ॥१०॥

गहणेसु ण चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा ।
उदगम्मि तहा णिच्चं, उत्तिगपणगेसु वा ॥११॥

अन्वयार्थ—(गहणेसु) वृक्षो के कुज मे एव गहन वन मे (बीएसु) बीजो पर (वा) अथवा (हरिएसु) दूब आदि हरित-काय पर (तहा) तथा (उदगम्मि) उदक नाम की वनस्पति पर अथवा जहाँ जल फैला हुआ हो एसी जगह पर (वा) तथा (उत्तिग) सर्पच्छत्रा--सर्प के छत्र के आकार वाली वन-स्पति पर तथा (पणगेसु) पनक उल्लि नामक वनस्पति विशेष पर एव लीलन-फूलन पर (निच्च) कभी भी (ण चिट्ठिज्जा) खडा न रहे, न बैठे और न सोवे ॥११॥

तसे पाणे ण हिंसिज्जा वाया अदुव कम्मुणा ।
उवरओ सव्वभूएसु, पासेज्ज विविहं जगं ॥१२॥

अन्वयार्थ—(तसे) द्वीन्द्रियादि त्रस (पाणे) प्राणियो को (वाया) वचन से (कम्मुणा) काया से (अदुव) अथवा मन से भी (ण हिंसिज्जा) हिंसा नही करे किन्तु (सव्वभूएसु) प्राणी मात्र पर (उवरओ) समभाव रखता हुआ (विविह) नाना प्रकार के त्रस स्थावर रूप (जग) ससार को (पासेज्ज) ज्ञान-दृष्टि से देखे अर्थात् ऐसा विचार करे कि नरक-तिर्यञ्चादि गतियो मे जीव कर्मों के वश हो कर नाना दु ख पा रहे हैं ॥

अट्ठ सुहुमाइ पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए ।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा ॥१३॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (जाइ) जिन आगे कहे जाने वाले (अट्ठ) आठ प्रकार के (सुहुमाइ) सूक्ष्म जीवो को

(जाणित्तु) जानने से (भूएसु) जीवो पर (दयाहिगारी) दया का अधिकारी होता है—उन जीवो को (पेहाए) भली भाँति देख कर (आस्) बैठे (चिट्ठ) खडा रहे (वा) अथवा (सएहि) सोवे ॥१३॥

कयराइ अट्ठ सुहुमाइं, जाइं पुच्छिज्ज संजए।
इमाइ ताइं मेहावी, आइक्खिज्ज वियक्खणो।१४।

अन्वयार्थ—(सजए) सयती शिष्य (पुच्छिज्ज) प्रश्न करता है कि हे भगवन्! (जाइ) जिन जीवो को जानने से मुनि दया का अधिकारी होता है वे—(अट्ठसुहुमाइ) आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव (कयराइ) कौन से हैं? (मेहावी) बुद्धिमान् (वियक्खणो) विचक्षण गुरु (आइक्खिज्ज) कहते है कि (ताइ) वे (इमाइ) ये हैं ॥१४॥

सिणेहं पुप्फसुहुम च, पाणुत्तिगं तहेव य।
पणग बीयहरियं च, अडसुहुमं च अट्ठमं ॥१५॥

अन्वयार्थ—(सिणेह) ओस, वर्फ, धुंअर, ओले आदि (च) और (पुप्फसुहुम) वड और उदुम्बर आदि के फूल जो सूक्ष्म तथा उसी रग के होने से जल्दी नजर नही आते (तहेव) उसी प्रकार (पाण) कुन्थुआ आदि सूक्ष्म जीव जो चलते हुए ही दिखाई देते है, स्थिर हो तो दिखाई नही देते (य) और (उत्तिग) कीडीनगरा—कीडियो का विल (पणग) चौमासेमे भूमि और काठ आदि पर होने वाली पांच रग की लीलन-फूलन (बीय) शाली आदि बीज का आग्रभाग जिससे अकुर उत्पन्न होता है

(च) और (हरिय) नवीन उत्पन्न हुई हरितकाय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाली होती है (च) और (अट्ठम) आठवां (अडसुहुम) अण्ड-सूक्ष्म अर्थात् मक्खी कीडी छिपकली आदि के सूक्ष्म अडे—ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं ॥१५॥

एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण संजए ।
अप्पमत्तो जए णिच्च, सव्विदियसमाहिए ॥१६॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (एव) इस प्रकार (एयाणि) पूर्वोक्त आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवो को (जाणित्ता) जान कर (सव्विदियसमाहिए) सभी इन्द्रियो का दमन करता हुआ एव (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित हो कर (णिच्च) सदैव (सव्व-भावेण) सव भावो से तीन करण तीन योग से (जए) इनकी यतना करने मे सावधान रहे ॥१६॥

धुव च पडिलेहिज्जा, जोगसा पायकबलं ।
सिज्जमुच्चारभूमि च, सथारं अदुवासणं ॥१७॥

अन्वयार्थ—साधु (पायकबल) पात्र और कवल (सिज्ज) शय्या (च) और (उच्चारभूमि) उच्चारभूमि—मलादि त्यागने का स्थान (सथार) विछौना (अदुवा) अथवा (आसण) पीठ-फलकादि आसन इन सव का (जोगसा) एकाग्र चित्त से (च) और (धुव) नित्य नियमपूर्वक यथासमय (पडि-लेहिज्जा) प्रतिलेखना करे ॥१७॥

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं ।
फासुयं पडिलेहित्ता, परिट्ठाविज्ज सजए ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (फासुय) जीव रहित स्थान की (पडिलेहित्ता) प्रतिलेखना कर के वहाँ (उच्चार) विष्टा (पासवण) मूत्र (खेल) कफ और (सिंघाणजल्लिय) नाक का मैल आदि (परिट्ठाविज्ज) यतनापूर्वक परठवे ॥१८॥

पविसित्तु परागारं, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
जयं चिट्ठे मियं भासे, ण य रूवेसु मणं करे ॥१९॥

अन्वयार्थ—(पाणट्ठा) पानी के लिए (वा) अथवा (भोयणस्स) भोजन के लिए (परागार) गृहस्थ के घर मे (पविसित्तु) प्रवेश कर के साधु (जय) यतनापूर्वक खडा रहे तथा (मिय) आवश्यकतानुसार परिमित (भासे) वचन बोले (य) और (रूवेसु) वहाँ स्त्र्यादि के रूप सौंदर्य को देख कर (मण) मन को (ण करे) चचल न होने दे ॥१९॥

बहु सुणेइ कण्णेहि, बहुं अच्छीहि पिच्छइ ।
ण य दिट्ठं सुयं सव्व, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ।२०।

अन्वयार्थ—(भिक्खू) साधु (कण्णेहिं) कानो से (बहु) बहुत-कुछ भली-बुरी बाते (सुणेइ) सुनता है (य) तथा (अच्छीहिं) आँखो से (बहु) बहुत कुछ भले बुरे पदार्थो को (पिच्छइ) देखता है किन्तु (दिट्ठ) देखी हुई (सुय) सुनी हुई (सव्व) सब बाते (अक्खाउ) किसी से कहना (ण अरिहइ) साधु को उचित नही है ॥२०॥

सुय वा जइ वा दिट्ठ, ण लविज्जोवघाइयं ।
ण य केण उवाएणं, गिहिजोगं समायारे ॥२१॥

अन्वयार्थ—(सुय वा) सुनी हुई (जइ वा) अथवा (दिट्ठ) देखी हुई बात (उवघाइय) किसी भी प्राणी को द्रव्य-भाव से पीडा पहुँचाने वाली हो तो (ण लविज्ज) साधु नही कहे (य) और (केणइ) किसी भी (उवाएण) कारण से (गिहिजोग) गृहस्थ का कार्य अर्थात् उसके बच्चो को खेलाना आदि कार्य (ण समायरे) कदापि नही करे ॥२१॥

णिट्ठाणं रसणिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं ण णिद्दिसे।२२।

अन्वयार्थ—(पुट्ठो) किसी के पूछने पर (वा वि) अथवा (अपुटठो) विना पूछे साधु (णिट्ठाण) सरस आहार मिला हो तो उसे (भद्दग) यह आहार तो अच्छा है (त्ति) इस प्रकार (ण णिद्दिसे) नही कहे (वा) अथवा (रसणिज्जूढ) नीरस आहार मिला हो तो उसे (पावग) यह आहार तो बुरा है इस प्रकार नही कहे (वा) और इसी प्रकार (लाभालाभ) आज तो आहार खूब मिला है अथवा आज आहार नही मिला है, इस प्रकार आहार लाभालाभ के विषय मे भी साधु कुछ नही कहे ॥२२॥

न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उंछं अयंपिरो।
अफासुयं न भुंजिज्जा, कीयमुद्देसियाहडं ॥२३॥

अन्वयार्थ—(भोयणम्मि) भोजन मे (गिद्धो) गृद्ध हो कर साधु केवल धन सम्पन्न गृहस्थी के घर ही (ण चरे) गोचरी के लिए नही जावे किन्तु (उछ) ज्ञात-अज्ञात कुल में एव गरीब और धनवान् दोनो प्रकार के दाताओ के घर में

(चरे) समान भाव से गोचरी जावे (य) और (अयपिरो) दाता का अवगुणवाद न बोलता हुआ जो कुछ मिल जाय उसी में सतुष्ट रहे (अफासुय) सचित मिश्र आदि अप्रासुक (कीय) साधु के लिए मोल लिया हुआ (उद्देसिय) साधु के निमित्त बना हुआ (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ आहारादि ग्रहण नही करे। कदाचित् भूल से ग्रहण कर लिया हो, तो उसे (ण भुजिज्जा) नही भोगवे ॥२३॥

सण्णिहिं च ण कुव्विज्जा, अणुमायं पि संजए।
मुहाजीवी असबद्धे, हविज्ज जगणिस्सिए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(सजए) साधु (अणुमाय पि) अणुमात्र भी (सण्णिहिं) घी-गुड आदि पदार्थों का सचय (ण कुव्विज्जा) नही करे किन्तु (मुहाजीवी) नि स्वार्थभाव से सावद्य व्यापार के बिना भिक्षा ले कर सयमी जीवन व्यतीत करने वाला (असबद्धे) गृहस्थो के प्रतिबन्ध से मक्त (च) और (जगणिस्सिए) छ काय जीवो का रक्षक (हविज्ज) बने ॥२४॥

लुहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्तं ण गच्छिज्जा, सुच्चा ण जिणसासणं ।२५।

अन्वयार्थ—साधु (लूहवित्ती) रूखा-सूखा खा कर सयम निर्वाह करने वाला हो (सुसतुट्ठे) रूखा-सुखा जो भी निर्दोष आहार मिले, उसीमे सन्तुष्ट रहने वाला (अप्पिच्छे) अल्प इच्छा वाला और (सुहरे) किसी भी प्राणी को कप्ट नही पहुँचा कर अल्प आहार से ही सतोष करने वाला अर्थात् ऊनोदरी आदि तप

करने वाला (सिया) हो और (ण) क्रोधादि के कटु परिणामों को बताने वाले (जिणसासण) जिनशासन (जिन-वचनो) को (सुच्चा) सुन कर (आसुरत्त) किसी के प्रति क्रोध (ण गच्छिज्जा) नही करे ॥२५॥

कण्णसुक्खेहिं सद्देहिं, पेम्मं णाभिणिवेसए ।
दारुण कक्कसं फास, काएण अहियासए ॥२६॥

अन्वयार्थ—साधु (कण्णसुक्खेहिं) कानो को प्रिय लगने वाले (सद्देहिं) शब्दो मे (पेम्म) रागभाव (णाभिणिवेसए) नही करे और इसी प्रकार (दारुण) दु ख जनक एव (कक्कस) कठोर (फास) स्पर्श को (काएण) शरीर से (अहियासए) सहन करे, किन्तु द्वेष नही करे अर्थात् मनोज्ञ शब्दादि विषयो मे साधु को रागभाव और अमनोज्ञ शब्दादि विषयो मे द्वेप नही करना चाहिए ॥२६॥

खुहं पिवास दुस्सिज्जं, सीउण्हं अरइं भयं ।
अहियासे अव्वहिओ,देहदुक्खं महाफलं ॥२७॥

अन्वयार्थ—साधु (खुह) भूख (पिवास) प्यास (दुस्सिज्ज) विषम भूमि वाला निवास-स्थान (सीउण्ह) सर्दी और गर्मी (अरइ) अरति और (भय) चोर-व्याघ्रादि का भय, इन सभी परीपहो को (अव्वहिओ) अदीन भाव से (अहियासे) सहन करे, क्योकि (देहदुक्ख) शारीरिक कष्टो को समभावपूर्वक सहन करने से ही (महाफल) मोक्ष रूपी महान् फल की प्राप्ति होती है ॥२७॥

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्व, मणसा वि ण पत्थए ॥२८॥

अन्वयार्थ—(आइच्चे) सूर्य के (अत्थगयम्मि) अस्त हो जाने पर (य) और (पुरत्था अणुग्गए) प्रात काल सूर्य के उदय न होने तक (सव्व) सभी प्रकार के (आहारमाइय) आहारादि की साधु (मणसा वि) मन से भी (ण पत्थए) इच्छा नही करे, तो फिर वचन और काया की तो बात ही क्या ॥२८॥

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे ।
हविज्ज उयरे दंते, थोव लद्धु ण खिसए ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अतिंतिणे) तिनतिनाहट न करता हुआ अर्थात् आहारादि के न देने पर भी गृहस्थ का अवर्णवाद न बोलने वाला (अचवले) चपलता रहित (अप्पभासी) अल्प भाषी (मियासणे) परिमित आहार करने वाला अल्पाहारी (उयरे दंते) उदर का दमन करने वाला अर्थात् भूख-प्यास आदि परीषहो को समभाव पूर्वक सहन करने वाला (हविज्ज) होवे तथा (थोव) थोडा आहार (लदधु) मिलने पर (ण खिसए) खीझे नही अर्थात् दाता की अथवा उस पदार्थ की निन्दा नही करे ॥२९॥

ण बाहिरं परिभवे, अत्ताणं ण समुक्कसे ।
सुयलाभे ण मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सिबुद्धिए ।३०।

अन्वयार्थ—साधु (बाहिर) किसी भी व्यक्ति का (ण परि-

भवे) अपमान—तिरस्कार नही करे और (अत्ताण न समुक्कसे) न आत्म-प्रशसा करे (सूयलाभे) श्रुतज्ञान की प्राप्ति होने पर श्रुतज्ञान का (जच्चा) जाति का (तवस्सिबुद्धिए) तप और बुद्धि का (ण मज्जिज्जा) मद नही करे अर्थात् कुल, बल, रूप, ऐश्वर्य आदि किसी का भी मद नही करे ॥३०॥

से जाणमजाणं वा, कट्टु आहम्मियं पयं ।
सवरे खिप्पमप्पाण, बीय तं ण समायरे ॥३१॥

अन्वयार्थ—(जाण) जानते हुए (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से प्रमादवश (आहम्मिय) यदि कदाचित् कोई अधार्मिक (पय) कार्य (कट्टु) हो जाय तो (से) निर्ग्रन्थाचार का पालन करने वाला मुनि उसे छिपाने की चेष्टा नही करे किन्तु (खिप्प) शीघ्र—तत्काल (अप्पाण) प्रायश्चित्त द्वारा उस पाप को दूर कर अपनी आत्मा को (सवरे) निर्मल बना ले और (बीय) दूसरी वार (त) वैसा पाप-कार्य—वैसी भूल (ण समायरे) न होने पावे इसके लिए सावधान रहे ॥३१॥

अणायार परक्कम्म, णेव गूहे ण णिण्हवे ।
सुई सया वियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए ॥३२॥

अन्वयार्थ—(सुई) निर्मल बुद्धि वाले (वियडभावे) सरल चित्त वाले (असमत्ते) विषयो की आसक्ति रहित और (सया) सदा (जिइदिए) इन्द्रियो को वश मे रखने वाले मुनि को अनाचार का सेवन नही करना चाहिये, किन्तु प्रमदवश (अणायार) अनाचार का (परकम्म) सेवन हो गया हो तो गुरु

महाराज के पास आलोचना कर के उसका प्रायश्चित्त ले। आलोचना करते समय (णेवगूहे) अधूरी बात कह कर उसे छिपाने की चेष्टा नही करे और (ण णिण्हवे) न असली बात को छिपाने के लिए मायाचार का सेवन करे, किन्तु जो बात जिस प्रकार से हुई हो उसे उसी रूपमे ज्यो की त्यो कह दे ॥

अमोहं वयणं कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो।
त परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥३३॥

अन्वयार्थ—(महप्पणो) ज्ञानादि गुणो के धारक महात्मा (आयरियस्स) आचार्य महाराज के (वयण) वचन—आज्ञा को (अमोह) सफल (कुज्जा) करे अर्थात् (त) आचार्य महाराज की आज्ञा को (वायाए) 'तहत्ति'—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है' इत्यादि आदर-सूचक शब्दो से (परिगिज्झ) स्वीकार करे। केवल वचनो द्वारा स्वीकार कर के ही न रह जाय अपितु उस आज्ञा को (कम्मुणा) कार्य द्वारा (उववायए) अपने आचरण मे लावे ॥३३॥

अधुवं जीवियं णच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया।
विणियट्टिज्ज भोगेसु, आउं परिमियमप्पणो ॥३४॥

अन्वयार्थ—(जीविय) इस जीवन को (अधुव) अस्थिर एव क्षणभगुर (णच्चा) जान कर तथा (अप्पणो) अपने (आउ) आयुष्य को (परिमिय) परिमित—थोडा जान कर अर्थात् न जाने क्षणभर मे क्या हो जायगा ऐसा जान कर तथा (सिद्धिमग्ग) सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग को (वियाणिया)

कल्याणकारी समझ कर साधु (भोगेसु) काम-भोगो से (विणियट्टिज्ज) सर्वथा निवृत्त हो जाय ॥३४॥

बलं थामं च पेहाए, सद्धामारुग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विण्णाय, तहप्पाणं णिजुंजए ॥३५॥

अन्वयार्थ—(अप्पणो) अपने मानसिक बल (च) और (थाम) शारीरिक बल तथा (सद्धा) श्रद्धा—दृढता को और (आरुग्ग) आरोग्य को (पेहाए) देख कर (च) तथा (खेत्त काल) द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को (विण्णाय) जान कर (तहप्पाण) जैसा अपना बलादि देखे उसी प्रकार अपनी आत्मा को (णिजुजए) तपश्चर्यादि मे लगावे किन्तु प्रमाद नही करे ॥३५॥

जरा जाव ण पीलेई, वाही जाव ण वड्ढई ।
जाविंदिया ण हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥३६॥

अन्वयार्थ—महापुरुष फरमाते हैं कि हे आर्यो (जाव) जब तक (जरा) बुढापा (ण पीडेई) पीडित नही कर दे अर्थात् तुम्हारे शरीर को जर्जरित नही बना डाले (जाव) जब तक (वाही) व्याधि (ण वड्ढई) तुम्हारे शरीर को नही घेर ले और (जाव) जब तक (इदिया) श्रोत्र-नेत्रादि इन्द्रियाँ (ण हायति) शक्तिहीन हो कर शिथिल नही हो जाती (ताव) तब तक—इससे पहले पहले (धम्म) श्रुतचारित्र रूप धर्म का (समायरे) आचरण कर लेना चाहिए अर्थात् जब तक धर्म का साधनभूत यह शरीर

स्वस्थ एव सुदृढ बना हुआ है तब तक धर्म का खूब आचरण कर लेना चाहिए, क्योकि उपरोक्त अगो मे से किसी भी अग की हानि हो जाने पर फिर यथावत् धर्म का आचरण नही हो सकता ॥३६॥

कोह माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छतो हियमप्पणो ॥३७॥

अन्वयार्थ—(अप्पणो) अपनी आत्मा का (हिय) हित (इच्छतो) चाहने वाले साधु को (पाववड्ढण) पाप को बढाने वाले (कोह) क्रोध (च) तथा (माण) मान (माय) माया (च) और (लोभ) लोभ इन (चत्तारि) चार (दोसे) दोषो का (उ) अवश्य ही (वमे) त्याग कर देना चाहिए ॥३७॥

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो ।
माया मित्ताणि णासेइ,लोभो सव्वविणासणो।३८।

अन्वयार्थ—(कोहो) क्रोध (पीइ) प्रीति का (पणासेइ) नाश कर देता है (माणो) मान—अहकार भाव (विणयणासणो) विनय का नाश कर देता है (माया) माया - कपटाई (मित्ताणि) मित्रता का (णासेइ) नाश कर देती है और (लोभो) लोभ (सव्वविणासणो) सभी सद्गुणो का नाश कर देता है ॥३८॥

उवसमेण हणे कोहं, माण मद्दवया जिणे ।
मायं चज्जभावेण, लोभ संतोसओ जिणे ॥३९॥

अन्वयार्थ—(कोह) क्रोध को (उवसमेण) क्षमा रूपी खड्ग से (हणे) नष्ट करे (माण) मान को (मद्दवया) मृदुता—विनय भाव से (जिणे) जीते (माय) माया को (अज्जवभावेण) सरलता से जीते (च) और (लोभ) लोभ को (सतोसओ) सतोष से (जिणे) जीते ॥३९॥

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥४०॥

अन्वयार्थ—(कोहो) क्रोध (य) और (माणो य) मान ये दोनो (अणिग्गहीया) क्षमा और विनय से शान्त न किये हो (य) और (माया) माया (य) तथा (लोभो) लोभ ये दोनो (पवड्ढमाणा) सरलता और सतोष रूपी सद्गुणो को धारण न करने से बढ रहे हो तो (कसिणा) आत्मा को मलीन बनाने वाले (एए) ये (चत्तारि) चारो (कसाया) कषाये (पुणब्भवस्स) पुनर्जन्म रूपी विष-वृक्ष की (मूलाइ) जड़ो को (सिंचति) सीचते हैं अर्थात् ये चारो कषाय जन्म-मरण रूपी ससार को बढाते हैं ॥४०॥

रायणिएसु विणयं पउंजे
धुवसीलयं सययं ण हावइज्जा ।
कुम्मुव्व अल्लीणपलीणगुत्तो,
परक्कमिज्जा तवसंजमम्मि ॥४१॥

अन्वयार्थ—(रायणिएसु) रत्नाधिक अर्थात् दीक्षा मे अपने से वडे चारित्र-वृद्ध और ज्ञान-वृद्ध गुरुजनो का (विणय) विनय (पउज) करे (धुवसीलय) अपने उच्च चारित्र का अर्थात् अठारह हजार शीलाग का (सयय) कदापि (ण हावइज्जा) त्याग नहीं करे और (कुम्मुव्व) कछुए की भाति (अल्लीणपलीगगुत्तो) अपने समस्त अगोपागो को वश मे रखता हुआ साधु (तवसजमम्मि) तप सयम मे (परक्कमिज्जा) उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति करे ॥४१॥

णिद्द च ण बहु मण्णिज्जा, सप्पहासं विवज्जए।
मिहो कहाहिं ण रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥४२॥

अन्वयार्थ—साधु (निद्द) निद्रा का (ण वहुमण्णिज्जा) बहुत आदर नही करे अर्थात् अधिक न सोवे (च) और (मप्पहास) अधिक हसी-मजाक करना (विवज्जए) त्याग दे (मिहोकहाहिं) किमी की गुप्त वातो को सुनने मे तथा स्त्री कथा आदि मे (ण रमे) आसक्त न होवे (सया) सदा (सज्झायम्मि) वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप स्वाध्याय मे (रओ) रत रहे ॥४२॥

जोगं च समणधम्मम्मि, जुंजे अणलसो धुवं।
जुत्तो य समणधम्मम्मि, अट्ठं लहइ अणुत्तरं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(अणलसो) आलस्य का सर्वथा त्याग करके (जोग) मन, वचन, काया रूप तीन योगो को (च) और कृत, कारित, अनुमोदन रूप तीन करण को (समण धम्मम्मि) क्षमा

मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, सयम, सत्य, शौच, अकिंचनत्व और ब्रह्मचर्य रूप दस प्रकार के श्रमण-धर्म मे (धुव) निरन्तर (जुजे) लगावे (य) क्योकि (समणधम्मम्मि) श्रमण-धर्म मे (जुत्तो) लगा हुआ मुनि (अणुत्तर)सर्वोत्कृष्ट (अट्ठ) अर्थ को—मोक्ष को (लहइ) प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

इहलोगपारत्तहियं, जेणं गच्छइ सुग्गइं ।
बहुस्सुय पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थविणिच्छय ।४४।

अन्वयार्थ—(जेण) जिससे (इहलोगपारत्तहिय)इस लोक मे और परलोक मे हित होता है तथा (सुग्गइ) सुगति की (गच्छइ) प्राप्ति होती है, ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधु (वहुस्सुय) आगमो के मर्म को जानने वाले वहुश्रुत मुनि की (पज्जुवासिज्जा) पर्युपासना—सेवा-शुश्रूषा करे और सेवा-शुश्रूषा करता हुआ (पुच्छिज्ज) प्रश्न पूछ-पूछ कर (अत्थ-विणिच्छय) पदार्थों का यथार्थ निश्चय करे ॥४४॥

हत्थं पाय च कायं च, पणिहाय जिइदिए ।
अल्लीणगुत्तो णिसिए, सगासे गुरुणो मुणी ॥४५॥

अन्वयार्थ—(जिइदिए) जितेन्द्रिय (मुणी) मुनि (हत्थ) हाथ (च) और (पाय) पाँव (च) तथा (काय) शरीर को (पणिहाय) जिस प्रकार गुरु महाराज का अविनय न हो उस प्रकार से सकोच कर तथा (अल्लीणगुत्तो) मन वचन काया से सावधान हो कर (गुरुणो)गुरु के (सगासे)समीप (णिसिए) बैठे ॥४५॥

ण पक्खओ ण पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ ।
ण य उरु समासिज्जा, चिट्ठिज्जा गुरुणतिए ।४६।

अन्वयार्थ—(किच्चाण) आचार्य महाराज के (पक्खओ) पसवाडे की ओर अर्थात् शरीर से शरीर चिपका कर (ण चिट्ठिज्जा) न बैठे और (ण पुरओ) न एकदम मुख के निकट बैठे (णेव पिट्ठओ) तथा पीठ पीछे भी न बैठे (य) और (गुरुणतिए) गुरु के सामने (उरु) पैर पर पैर (न समासिज्जा) रख कर न बैठे अर्थात् अविनय-सूचक आसनो से न बैठे ॥४६॥

अपुच्छिओ ण भासिज्जा, भासमाणस्स अतरा ।
पिट्ठिमंस ण खाइज्जा, मायामोस विवज्जए ॥४७॥

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य (अपुच्छिओ) गुरु महाराज के बिना पूछे और (भासमाणस्स) गुरु महाराज जब किसी से बातचीत कर रहे हो तब (अतरा) बीच-बीच मे (ण भासिज्जा) न बोले और (पिट्ठिमस) किसी की पीठ पीछे निन्दा (ण खाइज्जा) न करे और (मायामोस) कपट सहित झूठ भी (विवज्जए) न बोले ॥४७॥

अपत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो तं ण भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं ।४८।

अन्वयार्थ—(जेण) जिस भाषा के बोलने से (अप्पत्तिय) अप्रीति—द्वेप या अविश्वास (सिया) उत्पन्न होता हो (वा) अथवा जिससे (परो) दूसरा व्यक्ति (आसु) शीघ्र (कुप्पिज्ज)

कुपित हो जाता हो तो (त) उस प्रकार की (अहियगामिणि) अहित करने वाली (भास) भाषा साधु (सव्वसो) कभी (ण भासिज्जा) नही बोले ॥४८॥

दिट्ठ मिय असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियं जियं।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं णिसिर अत्तव ॥४९॥

अन्वयार्थ—(अत्तव) आत्मज्ञानी साधु (दिट्ठ) साक्षात् देखी हुई (मिय) परिमित (असदिद्ध) सन्देह रहित (पडिपुण्ण) पूर्वापर सम्बन्ध सहित (विय) स्पष्ट अर्थ वाली (जिय) चालू विषय का प्रतिपादन करने वाली (अयपिर) मध्यस्थ भाव से उच्चारण की हुई (अणुव्विग) किसी को उद्वेग—पीडा न पहुचाने वाली (भास) भाषा (णिसिर) बोले ॥४६॥

आयारपण्णत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं।
वायविक्खलिय णच्चा, ण त उवहसे मुणी ॥५०॥

अन्वयार्थ—(आयारपण्णत्तिधर) आचाराग व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि के ज्ञाता अथवा आचारधर—स्त्रीलिंग-पुल्लिग आदि का ज्ञान रखने वाला और प्रज्ञप्तिधर स्त्रीलिंग-पुल्लिग आदि के विशेषणो को विशेष रूप से जानने वाला और (दिट्ठिवाय) दृष्टिवाद का (अहिज्जग) अध्ययन करने वाला अथवा प्रकृति प्रत्यय लोप आगम वर्णविकार लकार आदि व्याकरण के सभी अगो को भली प्रकार जानने वाला मुनि भी यदि कदाचित् (वायविक्खलिय) वोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाय अर्थात् लिंगादि से अशुद्ध शब्द का प्रयोग कर बैठे, तो

(णच्चा) उनके अशुद्ध वचन को जान कर (मुणी) साधु (तं) उन महा पुरुषो का (ण उवहसे) उपहास नही करे ॥५०॥

णक्खत्त सुमिणं जोगं, णिमित्तं मतभेसजं ।
गिहिणो तं ण आइक्खे, भूयाहिगरण पय ॥५१॥

अन्वयार्थ—(णक्खत्त) नक्षत्र विद्या (सुमिण) स्वप्नो का शुभाशुभ फल वतलाने वाली विद्या (जोग) वशीकरणादि चूर्ण योग (णिमित्त) भूत, भविष्य का फल बताने वाली निमित्त विद्या (मत) भूत आदि निकालने की मत्र-विद्या (भेसज) अतिसार आदि रोगो की औपधि (त) ये सब वाते साधु (गिहिणो) गृहस्थो को (ण आइक्खे) न वतावे, क्योकि ये (भूयाहिगरण) प्राणियो के अधिकरण के (पय) स्थान है—अर्थात् इनकी प्ररूपणा करने से छ काय जीवो की हिंसा होती है ॥५१॥

अण्णट्ठं पगडं लयणं, भइज्ज सयणासणं ।
उच्चारभूमिसंपण्ण, इत्थीपसुविवज्जियं ॥५२॥

अन्वयार्थ—(लयण) जो मकान (अण्णट्ठ) गृहस्थ ने दूसरो के लिए (पगड) वनाया हो अर्थात् जो मकान साधु का निमित्त रख कर नही वनाया गया हो, (उच्चार-भूमिसपण्ण) जिसमे मलमूत्रादि परठवने के लिये स्थान हो और (इत्थीपसुविवज्जिय) जो मकान स्त्री, पशु, पण्डक आदि से रहित हो, ऐसे मकान मे साधु (भइज्ज) ठहर सकता है और इसी प्रकार (सयणासण) जो शय्या तथा पाट-पाटलादि

गृहस्थ ने अपने लिए बनाये हो, उन्हे साधु अपने उपयोग मे ले सकता है ॥५२॥

विवित्ता य भवे सिज्जा, णारीणं ण लवे कहं ।
गिहिसथवं ण कुज्जा, कुज्जा साहुहिं संथवं ॥५३॥

अन्वयार्थ—(सिज्जा) यदि स्थानक (विवित्ता) विविक्त, (भवे) हो अर्थात् वहाँ साधु अकेला ही हो तो (णारीण) स्त्रियो के साथ (कह) बातचीत (ण लवे) नही करे, तथा उन्हें धर्मकथादि भी नही सुनावे (य) तथा (गिहिसथव) गृहस्थो के साथ अति परिचय भी (ण कुज्जा) नही करे किन्तु (साहूहिं) साधुओ के साथ ही (सथव) परिचय (कुज्जा) करे ॥५३॥

जहा कुक्कुडपोयस्स, णिच्चं कुललओ भयं ।
एवं खु बभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥५४॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (कुक्कुड पोयस्स) मुर्गी के बच्चे को (निच्च) सदैव (कुललओ) बिल्ली से (भय) भय बना रहता है (एव खु) उसी प्रकार (बभयारिस्स) ब्रह्मचारी पुरुप को (इत्थीविग्गहओ) स्त्री के शरीर से सदा (भय) भय मानते रहना चाहिए ॥५४॥

चित्तभित्तिं ण णिज्झाए, णारिं वा सुअलंकियं ।
भक्खरं पिव दट्ठू ण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥५५॥

अन्वयार्थ—साधु (चित्तभित्ति) स्त्री के चित्रो से युक्त भीत को (वा) अथवा (सुअलकिय) अच्छे वस्त्राभूषणो से

सजी हुई एवं विना सजी हुई (णारिं) कैसी भी स्त्री को (ण णिज्झाए) अनुरागपूर्वक न देखे। यदि कदाचित् अकस्मात् उधर दृष्टि पड जाय तो (भक्खर पिव) जिस प्रकार सूर्य को (दट्ठूण) देख कर लोग अपनी दृष्टि को तत्काल हटा लेते हैं उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी (दिट्ठिं) अपनी दृष्टि को (पडिसमाहरे) तत्काल पीछी हटा लेवे, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य की ओर अधिक देर तक देखने से दृष्टि निर्वल हो जाती है, ठीक उसी प्रकार स्त्री को अनुरागपूर्वक देखने से चारित्र में निर्वलता आ जाती है ॥५५॥

हत्थपायपलिच्छिण्णं कण्णणासविगप्पियं ।
अवि वाससयं णारिं, बभयारी विवज्जए ॥५६॥

अन्वयार्थ—(हत्थपायपलिच्छिण्ण) जिस स्त्री के हाथ पांव कट गये हो और (कण्णणासविगप्पिय) कान-नाक कटी हुई हो अथवा विकृत हो गई हो (अवि वाससय) जो सौ वर्ष की आयु वाली पूर्ण वृद्धा एव जर्जरित शरीर वाली हो गई हो (णारिं) ऐसी स्त्रियो के ससर्ग को भी (बभयारी) ब्रह्मचारी साधु (विवज्जए) त्याग दे अर्थात् स्त्रियो का ससर्ग कदापि नही करे ॥५६॥

विभूसा इत्थीससग्गो, पणीयं रसभोयणं ।
णरस्सऽत्तगवेसिस्स, विस तालउडं जहा ॥५७॥

अन्वयार्थ—(अत्तगवेसिस्स) आत्म-कल्याण की इच्छा रखने वाले (णरस्स) ब्रह्मचारी पुरुप के लिए (विभूसा) शरीर

की शोभा (इत्थीससग्गो) स्त्री का ससर्ग (पणीय रसभोयण) पौष्टिक आहार, ये सब (तालउड) तालपुट नामक (विस) उग्र विष के (जहा) समान है अर्थात् जिस प्रकार तालपुट नाम का विष तालु के लगते ही प्राणो को हर लेता है, उसी प्रकार शरीर की विभूषा आदि दुर्गुण भी साधु के चारित्र के गुणो को नष्ट कर देते है ॥५७॥

अगपच्चंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
इत्थीणं त ण णिज्जाए, कामरागविवड्ढणं ॥५८॥

अन्वयार्थ—(इत्थीण) स्त्रियो के (अगपच्चग सट्ठाण) अग उपाग की रचना (चारुल्लविय पेहिय) मनोहर बोलना ओर कटाक्षविक्षेपादि युक्त मनोहर देखना (त) इन सब की ओर ब्रह्मचारी पुरुष को (ण णिज्झाए) रागपूर्वक नही देखना चाहिए, क्योकि ये सब (कामरागविवड्ढण) काम-विकार को बढाने वाले हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करने वाले है ।५८।

विसएसु मणुण्णेसु, पेमं णाभिणिवेसए ।
अणिच्चं तेसिं विण्णाय, परिणामं पुग्गलाणय ॥५९॥

अन्वयार्थ—(तेसिं) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी (पुग्गलाण) पुद्गलो के (परिणाम) परिणाम को (अणिच्च) अनित्य (विण्णाय) जान कर बुद्धिमान् साधु (मणुण्णेसु) मनोज्ञ (विसएसु) शब्दादि विषयो मे (पेम) राग भाव (णाभिणिवेसए) नही करे (उ) और इसी प्रकार अमनोज्ञ विषयो मे द्वेष भी नही करे, क्योकि क्षण भर मे मनोज्ञ पदार्थ अमनोज्ञ हो

जाते है ऐसी अवस्था मे रागभाव और द्वेष भाव करना व्यर्थ है ।।५९।।

पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं णच्चा जहातहा ।
विणीयतिण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा ।।६०।।

अन्वयार्थ—(तेसिं) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी (पोग्गलाण) पुद्गलो के (परीणाम) परिणाम को (जहातहा) यथावत्—जैसा है वैसा (णच्चा) जान कर अर्थात् जो वस्तु आज सुन्दर दिखाई देती है वही कल असुन्दर और असुन्दर वस्तु सुन्दर दिखाई देने लगती है। इस प्रकार पुद्गलो के परिणाम को जान कर साधु (विणीयतण्हो) लालसा रहित हो कर (सीईभूएण अप्पणा) अपनी आत्मा को शान्त वना कर (विहरे) विचरे अर्थात् सयम मार्ग का आराधन करे ।।६०।।

जाइ सद्धाइ णिक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसम्मए ।।६१।।

अन्वयार्थ—(जाइ) जिस (सद्धाइ) श्रद्धा से एव वैराग्य भाव से (उत्तम) उत्तम (परियायट्ठाण) चारित्र को—प्रव्रज्या को (णिक्खतो) स्वीकार किया है (तमेव) उसी श्रद्धा तथा पूर्ण वैराग्य से (आयरिय समए) महा पुरुषो द्वारा वताये गये (गुणे) उत्तम गुणो मे अनुरक्त रह कर (अणुपालिज्जा) साधु को सयम धर्म का यथावत् पालन करना चाहिए ।।६१।।

तव चिमं संजमजोगयं च,
सज्झायजोगं च सया अहिट्ठए ।

सूरे व सेणाइ समत्तमाउहे,
अलमप्पणोहोइ अलं परेसिं ॥६२॥

अन्वयार्थ---(व) जिस प्रकार (सेणाइ) चतुरगिणी सेना से घिरा हुआ तथा (समत्तमाउहे) शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित (सूरे) शूरवीर पुरुष अपनी रक्षा करता हुआ दूसरो की भी रक्षा करता है उसी प्रकार (इम च) इस बारह प्रकार के (तव) अनशनादि तप (च) और (सजमजोगय) छ जीव-निकाय की रक्षा रूप सयम (च) तथा (सज्झाय जोग) स्वाध्याय योग का (सया) सदा (अहिट्ठिए) आराधन करने वाला मुनि (अप्पणो) अपनी आत्मा की रक्षा करने मे एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ (होइ) होता है और (परेसिं) दूसरों की भी रक्षा एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ होता है अथवा अपनी आत्मा की रक्षा करता हुआ कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने मे समर्थ होता है ॥६२॥

सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो,
अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झई जं सि मलं पुरेकडं,
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ॥६३॥

अन्वयार्थ---(व) जिस प्रकार (जोइणा) अग्नि द्वारा (समीरिय) तपाए हुए (रुप्पमल) सोना-चाँदी का मैल दूर हो जाता है उसी प्रकार (सज्झाए) वाचना आदि पांच प्रकार की स्वाध्याय और (सज्झाण-सज्झाणरयस्स) धर्मध्यान शुक्ल-

ध्यान मे तल्लीन (ताइणो) छः काय जीवो के रक्षक (अपाव-भावस्स) निष्पापी शुद्ध अन्तःकरण वाले और (तवे) तपस्या मे (रयस्स) रत (सि) साधु का (पुरेकड) पूर्व-सचित (ज मल) पाप रूपी मैल (विसुज्झई) नष्ट हो जाता है ।६३।

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए,
सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे ।
विरायई कम्मघणम्मि अवगए,
कसिणब्भपुडावगमे व चदिमे ।।६४।।त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ—(व) जिस प्रकार (कसिणब्भपुडावगमे) सम्पूर्ण वादलो के हट जाने पर (चदिमे) शरत्कालीन पूर्णमासी का चन्द्रमा (विरायई) शोभित होता है उसी प्रकार (तारिसे) पूर्वोक्त गुणो का धारक (दुक्खसहे) अनुकूल-प्रतिकूल सभी परीपहो को समभावपूर्वक सहन करने वाला (जिइदिए) जितेन्द्रिय (सुएणजुत्ते) श्रुतज्ञान से युक्त (अममे) ममत्व भाव से रहित (अकिंचणे) द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित (से) वह साधु (कम्मघणम्मि) ज्ञानावरणीयादि कर्म रूपी वादलो के (अवगए) दूर हो जाने पर (विरायई) निर्मल केवलज्ञान के प्रकाश से शोभित होता है ।।६४।। (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

।। आठवां अध्ययन समाप्त ।।

'विनयसमाधि' नामक नौवाँ अध्ययन

उद्देशक १

थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं ण सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो,
फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थ—जो साधु (थभा) अहकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणयं) विनय धर्म की (ण सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नही करता है तो (सो चेव) वे अहकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणो को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बाँस का (फल) फल (वहायहोइ) स्वय बाँस को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसे बाँस के फल आने पर बाँस का नाश हो जाता है, उसी प्रकार साधु की आत्मा मे अविनय को उत्पन्न करने वाले अहकारादि दुर्गुण उत्पन्न होने पर उसके चारित्र का नाश हो जाता है ॥१॥

जे यावि मंदित्ति गुरुं विइत्ता,
डहरे इमे अप्पसुए त्ति णच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा,
करंति आसायण ते गुरूणं ॥२॥

अन्वयार्थ—(जे) जो साधु (गुरु) गुरु को (मंदित्ति) यह मन्द-बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझ कर (यावि) अथवा (इमे) यह (डहरे) बालक है (अप्पसुएत्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (णच्चा) मान कर (हीलंति) हीलना निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरूण, गुरुजनों की (आसायण) आशातना (करंति) करते हैं जिससे उन्हे (मिच्छं) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है ॥२॥

पगईइ मंदा वि भवंति एगे,
डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा,
जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥३॥

अन्वयार्थ—(एगे) बहुत से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइ) स्वभाव से (मंदा वि) मंद-बुद्धि (भवंति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत-से (डहरा वि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुयबुद्धोववेया) शास्त्रो के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् होते हैं ज्ञान मे न्यूनाधिक होने पर भी (आयारमंता) सदाचारी और (गुणसुट्ठिअप्पा) मूलगुण-उत्तरगुणो का सम्यक्

पालन करने वाले गुरुजनो का अपमान नही करना चाहिए क्योकि (सिहिरिव) जिस प्रकार अग्नि इधन को जला कर भस्म कर देती है, उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनो की हीलना, उस निन्दक के ज्ञानादि गुणो को (भासकुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनो की आशातना करने से ज्ञानादि गुणो का नाश हो जाता है ॥३॥

जे यावि णागं डहरं ति णच्चा,
आसायए से अहियाय होइ ।
एवायरियं पि हु हीलयंतो,
णियच्छइ जाइपहं खु मंदो ॥४॥

अन्वयार्थ—(जे यावि) जो कोई मूख मनुष्य (डहरति) यह छोटा है, इस प्रकार (णच्चा) जान कर (णाग) साँप को (आसायए) छेडता है—लकडी आदि से उसे सताता है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है (एव) उसी प्रकार (आयरियपि) आचार्य महाराज की (हीलयतो) हीलना करने वाला (मदो) मन्द-बुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपहं) एकेन्द्रियादि जातियो मे (णियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फस कर अनन्त-ससारी बन जाता है ॥

आसीविसो वा वि परं सुरुट्ठो,
किं जीवणासाउ परं णु कुज्जा ।

आयरियपाया पुण अप्पसण्णा,
अबोहि आसायण णत्थि मोक्खो ॥५॥

अन्वयार्थ—(आसीविसो) दृष्टि विष सांप (पर) अत्यन्त (सुरुट्ठो वा वि) कुपित हो जाने पर भी (जीवनासाउ) प्राण नाश से (पर) अधिक (किं णुकुज्जा) और क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ नही कर सकता, किन्तु जो शिष्य (आयरिय पाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसण्णा) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु की आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, जिससे (पुण) फिर (णत्थिमोक्खो) उसे मोक्ष की प्राप्ति नही होती ॥५॥

भावार्थ—सांप का काटा हुआ प्राणी एक ही बार मरता है, किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को बार-बार जन्म-मरण करना पडता है ।

जो पावगं जलियमवक्कमिज्जा,
आसीविसं वा वि हु कोवइज्जा ।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी,
एसोवमाऽसायणया गुरुण ॥६॥

अन्वयार्थ—जो अभिमानी शिष्य (गुरूण) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलिय) जलती हुई (पावग) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरो से कुचल कर बुझाना चाहता है (वा वि) अथवा जो (आसीविस) दृष्टिविष सर्प को

(हु कोवइज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) मूर्ख (जीवियट्ठी) जीने की इच्छा से (विस) हालाहल विष को (खायइ) खाता है ॥६॥

सिया हु से पावय णो डहिज्जा,
आसीविसो वा कुविओ ण भक्खे।
सिया विसं हालहल ण मारे,
ण यावि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥७॥

अन्वयार्थ—(सिया हु) यदि—कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पाँव रखने वाले पुरुष के पाँव को (पावय) अग्नि (णो डहिज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टिविष सर्प भी (ण भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हालहल) हालाहल नामक (विस) तीव्र विष भी (ण मारे) खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सब बाते असम्भव हैं, तथापि विद्याबल एव मन्त्रबल से कदाचित् सम्भव हो भी जाय, किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (ण यावि मुक्ख) कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ॥७॥

जो पव्वयं सिरसा भित्तुमिच्छे,
सुत्त च सीहं पडिबोहइज्जा।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं,
एसोवमाऽसायणया गुरूणं ॥८॥

अन्वयार्थ—जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरूण) गुरुमहाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) (पव्वय) पर्वत को (सिग्मा) मस्तक की टक्कर से (भित्तु) फोडना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्त) सोते हुए (सीह) सिंह को (पडिवोहइज्जा) लात मार कर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार पर (पहार दए) मुष्टि का प्रहार करता है ॥८॥

भावार्थ—उपरोक्त कार्य करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है, इसी प्रकार गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे,
सिया हु सीहो कुविओ ण भक्खे।
सिया ण भिंदिज्ज व सत्ति अग्गं,
ण यावि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥

अन्वयार्थ—(सियाहु) कदाचित् कोई वासुदेवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिंदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीहो) सिंह भी (ण भक्खे) न खावे (व) अथवा (सिया) कदाचित् (सत्ति अग्ग) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (ण भिंदिज्ज) हाथ न कटे अर्थात् ये

असम्भव बाते भी सम्भव हो जाय, किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य की (ण यावि मुक्खो) मुक्ति कभी नही हो सकती ॥९॥

आयरियपाया पुण अप्पसण्णा,
अबोहि आसायण णत्थि मुक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा ॥१०

अन्वयार्थ—(आयरियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज की (आसायण) आशातना कर के (पुण अप्पसण्णा) उन्हें अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अबोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (णत्थि मुक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नही हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणाबाहसुहाभिकखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने मे (रमिज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे ॥१०॥

जहाहिअग्गी जलणं णमंसे,
णाणाहुइमंतपयाभिसित्तं ।
एवायरियं उवचिट्ठइज्जा,
अणंतणाणोवगओ वि संतो ॥११॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (णाणाहुईमतपयाभिसित्त) नाना प्रकार की घृतादि

की आहुतियो से तथा वेदमन्त्रो से सस्कार की हुई (जलण) यज्ञ की अग्नि को (णमसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणतणाणोवगओऽवि) अनन्त ज्ञान सपन्न मतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरिय) आचार्य महाराज की (उवचिट्ठ-इज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥१ ॥

जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे,
तस्संतिए वेणइयं पउजे ।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ,
कायग्गिरा भो मणसा य णिच्चं ॥१२॥

अन्वयार्थ—(भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते हैं कि—शिष्य का यह कर्तव्य है कि—(जस्सतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइ) धर्मशास्त्रो की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्सतिए) उनकी सवा (वेणइय) विनय-भक्ति (पउजे) करे (पजलीओ) दोनो हाथ जोड कर (सिरसा) और मस्तक झुका कर नमस्कार करे (य) और (कायग्गिरा मणसा) मन-वचन-काया से (णिच्च) सदा (सक्कारए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खडे होना, उन्हे वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यो से उनका विनय करे॥१२॥

लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं,
कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं ।

जे मे गुरू सययमणुसासयंति,
तेऽहं गुरू सययं पूययामि ॥१३॥

अन्वयार्थ—(लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जा—भय (दया) दया—अनुकम्पा (संजम) संयम और (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य, ये चारो (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाण) विशुद्धि के स्थान हैं। इसलिए शिष्य को यह भावना रखनी चाहिए कि (जे) जो (गुरु) गुरु महाराज (मे) मुझे (सयय) सदा (अणुसासयति) शिक्षा देते हैं (तेऽहं) उन गुरु महाराज की मुझे (सयय) सदैव (पूययामि) विनय-भक्ति करनी चाहिए ॥१३॥

जहा णिसंते तवणच्चिमाली,
पभासई केवलभारहं तु।
एवायरिओ सुयसीलबुद्धिए,
विरायई सुरमज्झे व इंदो ॥१४॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (णिसते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रातःकाल (तवणच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूर्य अपनी किरणो से (केवलभारहतु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरियो) आचार्य महाराज (सुयसीलबुद्धिए) अपने ज्ञान चारित्र तथा तात्त्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं, और (व) जिस प्रकार (सुरमज्झे) देवो में (इदो) इन्द्र शोभित होता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज भी

साधुओ के बीच मे (विरायई) शोभित होते हैं ॥१४॥

जहा ससी कोमुइजोगजुत्ता,
णक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा ।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के,
एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (णक्खत्त तारागण परिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओ के समूह से घिरा हुआ (कोमुइ जोगजुत्तो) कार्तिक पूर्णमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलो से रहित (विमले) अतीव निर्मल (खे) आकाश मे (सोहई) शोभित होता है (एव) उसी प्रकार (गणी) आचार्य महाराज (भिक्खुमज्झे) साधु-समूह के मध्य में (सोहइ) शोभित होते हैं ॥१५॥

महागरा आयरिया महेसी,
समाहिजोगे सुयसीलबुद्धिए ।
संपाविउकामे अणुत्तराइं,
आराहए तोसइ धम्मकामी ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अणुत्तराइ) उत्कृष्ट ज्ञानादि भाव-रत्नो को (संपाविउकामे) प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्मकामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नो के भण्डार (सुयसीलबुद्धिए) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहि जोगे) समाधिवत (महेसी) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (आराहए) आराधना करे और (तोसइ)

उनकी विनय-भक्ति कर के उन्हे प्रसन्न रखे ॥१६॥

सुच्चाण मेहावी सुभासियाइं,
सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो ।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे,
से पावई सिद्धिमणुत्तरं ॥ त्ति बेमि ॥१७॥

अन्वयार्थ—(मेहावी) गुरु वचनो को यथार्थ रूप से धारण करने की बुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासियाइ) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनों को (सुच्चाण) सुन कर (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित हो कर (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसए) सेवा-शुश्रूषा करे। इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणो को (आराहइत्ताण) प्राप्त कर के (अणुत्तर) उत्तम (सिद्धि) सिद्धगति को (पावइ) प्राप्त होता है ॥१७॥

॥ नौवे अध्ययन का पहला उद्देशक समाप्त ॥

उद्देशक २

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स,
खधाओ पच्छा समुविति साहा ।
साहाप्पसाहा विरुहंति पत्ता,
तओ सि पुप्फं च फल रसो य ॥१॥

अन्वयार्थ—(दुमस्स) वृक्ष के (मूलाउ) मूल से (खधप्प-भवो) स्कन्ध—धड उत्पन्न होता है (पच्छा) इसके वाद (खधाउ) स्कन्ध से (साहा) शाखाएँ (समुविति) उत्पन्न होती हैं (साहाप्पसाहा) शाखाओ से प्रशाखाएँ—छोटी-छोटी डालियाँ (विरुहति) उत्पन्न होती हैं और उनसे (पत्ता) पत्ते निकलते हैं (तओ) इसके वाद (सि) उस वृक्ष के क्रमश (पुप्फ) फूल (च) और (फल) फल (य) और (रसो) रस उत्पन्न होता है ॥१॥

एव धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो ।
जेण कित्ति सुय सिग्घं, णीसेसं चाभिगच्छइ ॥२॥

अन्वयार्थ—(एव) इसी प्रकार (धम्मस्स) धर्मरूपी वृक्ष का (मूल) मूल (विणओ) विनय है और (से) उसका (परमो) सर्वोत्कृष्ट फल (मुक्खो) मोक्ष है (जेण) उस विनय रूपी मूल द्वारा विनयवान् शिष्य इस लोक मे (कित्ति) कीर्ति और (सुय) द्वादशाग रूप श्रुतज्ञान को (अभिगच्छइ) प्राप्त होता है (च) और महापुरुषो द्वारा की गई (णीसेस) परम (सिग्घ)

प्रशसा को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् क्रमश अन्त मे नि श्रे-यस रूपी मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है ॥२॥

जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई णियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा ॥३॥

अन्वयार्थ—(जहा) जिस प्रकार (सोययय) जल के प्रवाह मे पडा हुआ (कट्ठ) काष्ठ इधर-उधर गोते खाता है, इसी प्रकार (जे) जो मनुष्य (चडे) कोधी (थद्धे) अभिमानी (दुव्वाई) कठोर तथा अहितकारी वचन बोलने वाला (णियडी) कपटी (सढे) धूर्त (य) और (अविणीअप्पा) अविनीत होता है (से) वह (वुज्झइ) चर्तुगति रूप ससार के अनादि प्रवाह मे बढता रहता है ॥३॥

विणयम्मि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पई णरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए ॥४॥

अन्वयार्थ—(उवाएण) प्रिय वचनादि किसी उपाय में आचार्य महाराज द्वारा (विणय पि) विनय धर्म की शिक्षा के लिए (चोइओ) प्रेरित किया जाने पर (जो) जो (णरो) अविनीत शिष्य (कुप्पई) क्रोध करता है (सो) मानो वह (इज्जति) अपने घर मे आती हुई (दिव्व) दिव्य —अलौकिक (सिरिं) लक्ष्मी को (दडेण) डडे से मार कर (पडिसेहए) घर से बाहर निकालता है ॥४॥

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥

अन्वयार्थ—(तहेव) दृष्टान्त द्वारा अविनय के दोष बताये जाते हैं यथा—(उववज्झा) राजा महाराजाओ के सवारी करने योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (अविणीअप्पा) अविनीतता अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन नही करने के कारण (आभिओगमुवट्ठिया) भार ढोते हुए (दुहमेहता) और अनेक प्रकार का दुःख पाते हुए (दीसति) देख जाते है ॥५॥

तहेव सुविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढि पत्ता महायसा ॥६॥

अन्वयार्थ—(तहेव) दृष्टात द्वारा विनय के गुण बताये जाते हैं यथा—(सुविणीअप्पा) स्वामी की आज्ञा का पालन करना आदि अच्छी शिक्षा पाये हुए (उववज्झा) राजा महाराजाओ के सवारी करने योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (इड्ढि पत्ता) नाना प्रकार के आभूषणो से सुसज्जित (महायसा) प्रशसा प्राप्त महा यशस्वी (सुहमेहता) अनेक प्रकार का सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है ॥६॥

तहेव अविणीअप्पा, लोगसि णरणारिओ।
दीसति दुहमेहंता, छाया ते विगलिदिया ॥७॥

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार तिर्यचो के विषय मे विनय और अविनय के गुण दोष बताये गये है, उसी प्रकार अब मनुष्यो के विषय मे बताये जाते हैं यथा—(लोगम्मि) इस लोक मे जो (णरणारिओ) पुरुष और स्त्रियाँ (अविणीअप्पा) अविनीत होते है (ते) वे (छाया) कोडे आदि की मार से

व्याकुल तथा (विगलिंदिया) नाक, कान आदि इन्द्रियो के काट दिये जाने से विरूप हो कर (दुहमेहता) नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है ॥७॥

दंडसत्थपरिजुण्णा असब्भवयणेहि य ।
कलुणा विवण्णछंदा, खुप्पिवासपरिगया ॥८॥

अन्वयार्थ—अविनीत स्त्री-पुरुप (दंडसत्थपरिजुण्णा) डंडे और शस्त्रो की मार से व्याकुल (असब्भवयणेहि) कठोर वचनो से तिरस्कृत (कलुणा) दया के पात्र (य) (विवण्णच्छंदा) पराधीन अतएव (खुप्पिवास परिग्गया) भूख-प्यास से व्याकुल हो कर दुःख पाते देखे जाते हैं ॥८॥

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि णरणारिओ ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥९॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (लोगसि) लोक मे (णरणारिओ) जो स्त्री-पुरुष (सुविणीअप्पा) विनीत होते हैं वे सब (इड्ढिं) ऋद्धि को (पत्ता) प्राप्त कर (महायसा) महायशस्वी (सुहमेहता) नाना प्रकार के सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है ॥९॥

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥१०॥

अन्वयार्थ—(तहेव) जिस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यो के विषय मे विनय और अविनय के गुण दोष बताये गये हैं, उसी

प्रकार अव देवो के विषय मे बताया जाता है यथा (अविणीअप्पा) जो जीव अविनीत होते है, वे आयुष्य पूर्ण कर के (देवा) वैमानिक अथवा ज्योतिषी देव (जक्खा) यक्षादि व्यन्तर देव (य) तथा भवनपति आदि गुह्यक देव होने पर भी ऊची पदवी न पा कर (आभिओगमुवट्ठिया) वडे देवो के सेवक बन कर उनकी सेवा करते हुए तथा (दुहमेहता) नाना प्रकार के दु ख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥१०॥

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महायसा ॥११॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (सुविणीअप्पा) जो जीव सुविनीत होते हैं, वे (देवा) देव (जक्खा) यक्ष (य) और (गुज्झगा) भवनपति जाति के गुह्यक देव हो कर उनमे भी (इड्ढि पत्ता) समृद्धिशाली तथा (महायसा) महायशस्वी होते हैं और (सुहमेहता) अलौकिक सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥११॥

जे आयरियउवज्झायाणं, सुस्सूसावयणंकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति,जलसित्ता इव पायवा ।१२।

अन्वयार्थ—(जे) जो शिष्य (आयरिय-उवज्झायाण) आचार्य और उपाध्यायो की (सुस्सूसावयणकरा) सेवा-शुश्रूषा करते हैं और उनके वचनो को मानते है (तेसिं) उनकी (सिक्खा) शिक्षा (जलसित्ता) जल से सीचे हुए (पायवा इव) वृक्षो के समान (पवड्ढति) दिनोदिन बढती है ॥१२॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पा णेउणियाणि य ।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इहलोगस्स कारणा ॥१३॥

अन्वयार्थ—(गिहिणो) गृहस्थ लोग (इह-लोगस्स कारणा) इह-लौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए (अप्पणट्ठा) अपने लिए (वा) अथवा (परट्ठा) पुत्र-पौत्रादि के (उवभोगट्ठा) उपभोग मे आने के लिए (सिप्पा) शिल्प-कला (य) और (णे उणिआणि) व्यवहार कुशलता आदि सीखते है ॥१३॥

जेण बधं वहं घोरं, परियावं च दारुणं ।
सिक्खमाणा णियच्छंति, जुत्ता ते ललिइंदिया ॥१४॥

अन्वयार्थ—(जेण) लौकिक कला सीखने मे (जुत्ता) लगे हुए (ललिइदिया) सुकोमल शरीर वाले (ते) श्रीमतो के पुत्र तथा राजकुमार आदि भी (सिक्खमाणा) शिक्षा पाते समय (घोर) दुस्सह (वह) वध (बध) बन्धन (च) और (दारुण) कठोर (परियाव) परितापना आदि कष्टो को (णियच्छति) सहन करते है ॥१४॥

ते वि तं गुरुं पूयंति, तस्स सिप्पस्स कारणा ।
सक्कारंति णमंसंति, तुट्ठा णिद्देसवत्तिणो ॥१५॥

अन्वयार्थ—(तेऽवि) वे सुकोमल शरीर वाले राजकुमार आदि इतना कष्ट पाने पर भी (तस्स) उस (सिप्पस्स) शिल्प कला को (कारणा) सीखने के लिए (तुट्ठा) प्रसन्नता पूर्वक (तं गुरु) उस शिल्पशिक्षक गुरु की (णिद्देसवत्तिणो) आज्ञा का

पालन करते हैं (पूयति) वस्त्र-आभूषणो द्वारा सेवा करते हैं (सक्कारंति) सत्कार-सम्मान करते हैं और (णमसति) नमस्कार करते है ॥१५॥

किं पुण जे सुयग्गाही, अणतहियकामए ।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं णाइवत्तए ।१६।

अन्वयार्थ—जब लौकिक विद्या को सीखने के लिए भी राजकुमार आदि इस प्रकार गुरु की विनय भक्ति करते हैं तो फिर (जे) जो (भिक्खू) मुनि (सुयग्गाही) आगमो के गूढ तत्त्वो के जिज्ञासु है तथा (अणतहियकामए) मोक्ष सुख को प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं (किं पुण) उन का तो कहना ही क्या ? अर्थात् उन्हे तो धर्माचार्य का विनय विशेष रूप से करना ही चाहिए । (तम्हा) इसलिए (आयरिया) आचार्य महाराज (ज) जो आज्ञा (वए) फरमावे (त) उस आज्ञा का (णाइवत्तए) उल्लघन नही करना चाहिए ॥१६॥

णीयं सिज्जं गइं ठाणं, णीयं आसणाणि य ।
णीयं च पाए वंदिज्जा, णीयं कुज्जा य अंजलिं ।१७।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (सिज्ज) अपनी शय्या (ठाण) अपने बैठने का स्थान (च) और (आसणाणि) आसन (णीय) गुरु की अपेक्षा नीचा रखे । (गइ) चलते समय भी (णीय) गुरु के आगे-आगे नही चले (च) और (णीय) नीचे झुक कर (पाए) गुरु के चरणो मे (वदिज्जा) वन्दना करे (य) और (णीय) नीचे झुक कर (अजलि कुज्जा)

हाथ जोड कर नमस्कार करे ॥१७॥

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि ।
खमेह अवराह मे, वइज्ज ण पुणोत्ति य ॥१८॥

अन्वयार्थ—यदि कभी असावधानी से (काएण) गुरु महाराज के शरीर के साथ (तहा) तथा (उवहिणामवि) उनके धर्मोपकरण के साथ (संघट्टइत्ता) सघट्टा—स्पर्श हो जाय (वइज्ज) तो शिष्य को उसी समय कहना चाहिए कि हे भगवन्! (मे) मेरा (अवराह) अपराध (खमेह) क्षमा करो (य) और (ण पुणुत्ति) आगे ऐसा कभी नहीं करूंगा ॥१८॥

दुग्गओ वा पओएणं, चोइओ वहई रहं ।
एव दुबुद्धि किच्चाण, वुत्तो वुत्तो पकुव्वई ॥१९॥

अन्वयार्थ—(वा) जिस प्रकार (दुग्गओ) दुर्बल—गलियार बैल (पओएण) चाबुक आदि की (चोइओ) मार पडने पर ही (रह) गाडी को (वहई) खीन्चता है (एव) उसी प्रकार (दुबुद्धि) दुष्ट बुद्धि अविनीत शिष्य भी (वुत्तो वुत्तो) गुरु के बारम्बार कहने पर ही (किच्चाण) उनका कार्य (पकुव्वई) करता है ॥१९॥

आलवते लवंते वा, ण णिसिज्जाइ पडिसुणे ।
मुत्तूणं आसणं धीरो, सुस्सूसाए पडिसुणे ॥२०॥

अन्वयार्थ—(आलवते) गुरु महाराज शिष्य को एक बार बुलावे (वा) अथवा (लवते) बारबार बुलावे तो (धीरो)

विनयवान् शिष्य को चाहिए कि वह (णिसिज्जाइ) अपने आसन पर बैठे बैठे ही (ण पडिस्सुणे) गुरु महाराज की आज्ञा को सुन कर उत्तर न दे, किन्तु (आसण) तत्काल आसन को (मुत्तूण) छोड कर खडा हो जाय एव सावधान हो कर गुरु महाराज की आज्ञा को सुने और (सुस्सूसाए) विनयपूर्वक (पडिस्सुणे) उसका उत्तर दे ॥२०॥

कालं छदोवयारं च, पडिलेहित्ताण हेउहिं ।
तेण तेण उवाएणं, तं तं सपडिवायए ॥२१॥

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिये कि वह (काल) द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव को (च) और (छदोवयार) गुरु महाराज के अभिप्राय को (हेउहिं) अपनी तर्कणा-शक्ति से (पडिलेहि-त्ताण) जान कर (तेण तेण) उन उन (उवाएण) उपायो से (तं त)उन उन कार्यों को (सपडिवायए)सम्पादित करे ।२१।

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य ।
जस्सेयं दुहओ णायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ।२२॥

अन्वयार्थ—(अविणीयस्स) अविनीत पुरुष के (विवत्ती) सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं (य) और (विणियस्स) विनीत पुरुष को (सपत्ती) सद्गुणो की प्राप्ति होती है (एय) ये (दुहओ) दोनो बाते (जस्स) जिसने (णाय) भली प्रकार जान ली हैं (से) वही (सिक्ख) शिक्षा (अभिगच्छइ) प्राप्त कर सकता है ॥२२॥

जे यावि चडे मइ-इड्ढि-गारवे,
पिसुणे णरे साहस हीणपेसणे ।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए,
असंविभागी ण हु तस्स मुक्खो ॥२३॥

अन्वयार्थ—(जे यावि) जो (णरे) पुरुष (चडे) क्रोधी (मइइड्ढिगारवे) बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान करने वाला (पिसुणे) चुगलखोर (साहस) साहसी—बिना-सोचे कार्य करने वाला (हीणपेसणे) गुरु की आज्ञा न मानने वाला (अदिट्ठ-धम्मे) धर्माचरण से रहित (विणए अकोविए) अविनीत और मूर्ख है वह (असविभागी) असविभागी होता है (तस्स) उसे (मुक्खो) मोक्ष (ण हु) प्राप्त नही हो सकता ॥२३॥

णिद्देसवित्ती पुण जे गुरूणं,
सुयत्थधम्मा विणयम्मि कोविया ।
तरित्तु ते ओघमिणं दुरुत्तरं,
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥२४॥त्ति बेमि।

अन्वयार्थ—(जे) जो (गुरूण) गुरु महाराज की (णिद्दे-सवित्ती) आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले है (जे सुयत्थधम्मा) तथा जो श्रुतधर्म के गूढ तत्त्वो को जानने वाले हैं (पुण) और (विणयम्मि कोविया) विनय के पालन मे चतुर होते है (ते) वे (इण) इस (दुरुत्तर) दुस्तर (ओघ) ससार रूपी समुद्र को (तरित्तु) तिर कर और (कम्म) कर्मों

का (खवित्तु) क्षय कर के (उत्तम) सर्वोत्तम (गइ) सिद्धगति (गया) प्राप्त करते हैं तथा उपरोक्त गुणो को धारण करने वाले पुरुषो ने गत काल मे सिद्धगति प्राप्त की है और भविष्य काल मे भी प्राप्त करेगे ॥२४॥ (त्ति वेमि) पूर्ववत् ।

॥ नौवे अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

उद्देशक ३

आयरियं अग्गिमिवाहियग्गी,
सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा ।
आलोइयं इंगियमेव णच्चा,
जो छंदमाराहयई स पुज्जो ॥१॥

अन्वयार्थ—(इव) जिस प्रकार (आहियग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (अग्गि) अग्नि की साधना करने मे सावधान रहता है उसी प्रकार (जो) जो शिष्य (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसमाणो) सेवा-शुश्रूषा करने मे (पडिजागरिज्जा) सदा सावधान रहता है तथा (आलोइय) उनकी दृष्टि और (इगियमेव) इगिताकार—चेष्टा को (णच्चा) जान कर (छद) आचार्य महाराज के अभिप्रायो के अनुकूल (आराहयई) कार्य करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१॥

आयारमट्ठा विणयं पउंजे,
सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो,
गुरुं तु णासाययई स पुज्जो ॥२॥

अन्वयार्थ—जो शिष्य (आयारमट्ठा) आचार प्राप्ति के लिए (विणय) गुरु महाराज की विनय-भक्ति (पउजे) करता है और (सुस्सूसमाणो) उनकी सेवा करता हुआ (वक्क) उनकी आज्ञा को (परिगिज्झ) स्वीकार करता है एव (जहोवइट्ठ) उसकी इच्छा के अनुसार (अभिकखमाणो) कार्य करता है (तु) और जो (गुरु) गुरु महाराज की (णासाययई) कभी भी आशातना नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥२॥

राइणिएसु विणयं पउंजे,
डहरा वि य जे परियाय जेट्ठा।
णीयत्तणे वट्टइ सच्चवाई,
उवायवं वक्ककरे स पुज्जो ॥३॥

अन्वयार्थ—(जे) जो साधु (रायणिएसु) रत्नाधिको की—सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय से बडे मुनियो की (विणय) विनय-भक्ति (पउजे) करता है (य) इसी प्रकार (डहराऽवि) जो मुनि अवस्था मे छोटे हैं, किन्तु (परियायजिट्ठा) दीक्षा मे बडे हैं, उनकी भी विनय-भक्ति करता है (णीयत्तणं) गुरुजनो के सामने नम्र भाव से (वट्टइ) रहता है (सच्चवाई)

हित-मित सत्य बोलता है (उवायव) सदा गुरु की सेवा मे रहता हुआ (वक्ककारे) उनकी आज्ञा का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥३॥

अण्णाय-उछ चरई विसुद्धं,
जवणट्ठया समुयाण च णिच्च ।
अलद्धुयं णो परिदेवइज्जा,
लद्धु ण विकत्थयई स पुज्जो ॥४॥

अन्वयार्थ—जो साधु (णिच्च) सदा (जवणट्ठया) सयम-यात्रा के निर्वाह के लिए (समुयाण(सामुदानिक गोचरी कर के (अण्णायउछ) अज्ञात-कुल से थोडा-थोडा (विसुद्ध) निर्दोष आहार (चरई) लेता है (च) और (अलद्धुय) यदि किसी समय आहार नही मिले तो (णो परिदेवइज्जा) खेद नहीं करता तथा (लद्धु) इच्छानुसार आहार के मिलने पर (ण विकत्थई) प्रशसा नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥४॥

सथारसिज्जासणभत्तपाणे,
अप्पिच्छया अइलाभेऽवि संते ।
जो एवमप्पाणभितोसइज्जा,
संतोसपाहण्णरए स पुज्जो ॥५॥

अन्वयार्थ—(जो) जो साधु (सथारसिज्जासणभत्तपाणे) संथारा, शय्या, आसन और आहार पानी के (अइलाभेऽविसते)

अधिक मिलते रहने पर भी (अप्पिच्छया) अल्प इच्छा रखता है एव उनमे मूर्च्छा नही रखता हुआ (सतोसपाहण्णरए) सन्तोष भाव रखता है (एव) इस प्रकार जो साधु (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभितोसइज्जा) सभी प्रकार से सन्तुष्ट रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥५॥

सक्का सहेउं आसाइ कंटया,
अओमया उच्छहया णरेणं ।
अणासए जो उ सहिज्ज कंटए,
वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥६॥

अन्वयार्थ—(उच्छहया) धनादि की प्राप्ति की (आसाइ) आशा से (णरेण) मनुष्य (अओमया) लोह के (कटया) तीक्ष्ण शूलो (बाणो) को (सहेउ) सहन करने मे (सक्का) समर्थ हो जाता है (उ) किन्तु (कण्णसरे) कानो मे बाणो के समान लगने वाले (वईमए) कठोर वचन रूपी (कटए) बाणो को सहन करना बहुत कठिन है, फिर भी जो उन्हे (अणासए) किसी भी आशा के बिना (सहिज्ज) समभाव पूर्वक सहन कर लेता है (स) वह (पुज्जो) वास्तव मे पूज्य है ॥६॥

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया,
अओमया तेऽवि तओ सुउद्धरा ।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि,
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥७॥

अन्वयार्थ—(अओमया) लोह के (कटया) कांटे—वाण (उ) तो (मुहुत्तदुक्खा) थोडे काल तक ही दु खदायी (हवति) होते हैं और (तेऽवि) वे (तओ) जिस अग मे लगते हैं, उस अग मे से (सुउद्धरा) योग्य वैद्य द्वारा सरलता से निकाले भी जा सकते है, किन्तु (वायादुरुत्ताणि) कटु वचन रूपी वाणो का (दुरुद्धराणि) निकलना वहुत कठिन है अर्थात् हृदय मे चुभ जाने के वाद उनका निकलना दु साध्य है, क्योंकि कठोर वचनो का प्रहार हृदय को वेध कर पार हो जाता है (वेराणु-वधीणि) इसलोक और परलोक मे वे वैर-भाव की परम्परा को वढाने वाले हैं तथा (महब्भयाणि) नरकादि नीच गतियो मे ले जाने के कारण वे महाभय के उत्पन्न करने वाले हैं ॥७॥

समावयंता वयणाभिघाया,
कण्णं गया दुम्मणियं जणंति ।
धम्मुत्ति किच्चा परमग्गसूरे,
जिइंदिए जो सहई स पुज्जो ॥८॥

अन्वयार्थ—(समावयता) समूह रूप से आते हुए (वयणा-भिघाया) कठोर वचन रूपी प्रहार (कण्णगया) कान मे पडते ही (दुम्मणिय) दौर्मनस्य भाव (जणति) उत्पन्न कर देते हैं अर्थात् कटु वचनो को सुनते ही मन की भावना दुष्ट हो जाती है किन्तु (धम्मुत्ति) 'क्षमा करना साधु का धर्म है' ऐसा (किच्चा) मान कर (जो) जो साधु उन कठोर वचन रूपी बाणो को (सहई) समभाव पूर्वक सहन कर लेता है, वह

(परमग्गसूरे) वीर-शिरोमणि है (जिइदिए) जितेन्द्रिय है (स) ऐसा साधु (पुज्जो) जगत्पूज्य होता है ॥८॥

अवण्णवायं च परम्मुहस्स,
पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं ।
ओहारिणी अप्पियकारिणिं च,
भासं ण भासिज्ज सया स पुज्जो ॥९॥

अन्वयार्थ—(जो) साधु (परम्मुहस्स) किसी की पीठ पीछे (च) तथा (पच्चक्खओ) सामने (अवण्णवाय) निंदा नही करता (च) और (पडिणीय) पर पीडाकारी (ओहारिणिं) निश्चयकारी (च) और (अप्पियकारिणिं) अप्रियकारी (भास) भाषा (सया) कभी (ण भासिज्ज) नही बोलता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥९॥

अलोलुए अक्कुहए अमाई,
अपिसुणे या वि अदीणवित्ती ।
णो भावए णो वि भाविअप्पा,
अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥१०॥

जो साधु (अलोलुए) जिन्हालोलुपी नही है एव किसी प्रकार का लोभ-लालच नही करता (अक्कुहए) मत्र-तत्रादि का प्रयोग भी नही करता (अमाई) जो निष्कट है (अपिसुणे) जो किसी की चुगली नही करता (यावि) तथा (अदीणवित्ती) भिक्षा नही मिलने पर भी जो दीनता नही दिखलाता (य)

और (णो भावए) जो दूसरो को प्रेरणा कर के उमसे अपनी स्तुति नही करवाता और (णोऽविभावि अप्पा) न स्वय अपने मुंह से अपनी प्रशसा करता है (य) और जो (सया) कभी (अकोउहल्ले) नाटक, खेल, तमाशे आदि देखने की इच्छा नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१०॥

गुणेहिं साहू अगुणेहिंऽसाहू,
गिण्हाहि साहू गुण-मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥११॥

अन्वयार्थ—गुरु महाराज फरमाते हैं कि (गुणेहि) विनयादि गुणो को धारण करने से (साहू) साधु होता है और (अगुणेहि) अविनयादि दुर्गुणो से (असाहू) असाधु होता है अर्थात् साधुपना गुणो पर अवलम्बित है । अतः हे शिष्यो ! (साहूगुण) साधु के योग्य गुणो को (गिण्हाहि) ग्रहण करो और (असाहू) असाधु गुणो दुर्गुणो को (मुच) छोड दो । इस प्रकार (जो) जो (अप्पएण) अपनी आत्मा द्वारा (अप्पग) अपनी आत्मा को (वियाणिया) समझा कर (रागदोसेहिं) राग-द्वेष मे (समो) समभाव रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥११

तहेव डहर च महल्लग वा,
इत्थि पुम पव्वइयं गिहिं वा ।

णो हीलए णो वि य खिसइज्जा,
थंभं च कोहं च चए स पुज्जो ॥१२॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार जो साधु (डहरं) बालक (च) और (महल्लग) वृद्ध की (इत्थी) स्त्री (वा) या (पुम) पुरुष की (पव्वइय) साधु (वा) या (गिहिं) गृहस्थ की किसी की भी (णो हीलए) एक बार भी हीलना—निन्दा नहीं करता (अवि य) तथा (णो खिसइज्जा) बार-बार हीलना—निन्दा नही करता (च) तथा जो (थभ) अहकार (च) और (कोहं) क्रोध को (चए) छोड देता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१२॥

जे माणिया सययं माणयंति,
जत्तेण कण्णं व णिवेसयंति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी,
जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जे) जो शिष्य (सयय) सतत (माणिया) गुरु महाराज को विनय-भक्ति द्वारा सम्मानित करते हैं तो (माणयति) गुरु महाराज भी विद्यादान द्वारा उन्हे योग्य बना देते हैं और (व) जिस प्रकार (कण्ण) माता-पिता अपनी कन्या का योग्य पति के साथ विवाह कर के उसे श्रेष्ठ कुल में स्थापित कर देते हैं, उसी प्रकार गुरु महाराज भी (जत्तण) प्रयत्नपूर्वक उन शिष्यो को (णिवेससयति) उच्च श्रेणी पर पहुँचा देते हैं (ते) ऐसे (माणरिहे) सम्मानीय उपकारी

पुरुषो की (जिइन्दिए) जो जितेन्द्रिय (सच्चरए) सत्यपरायण (तवस्सी) तपस्वी शिष्य (माणाए) विनय-भक्ति करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१३॥

तेसिं गुरूणं गुणसायराणं,
सुच्चाण मेहावी सुभासियाइं ।
चरे मुणी पचरए तिगुत्तो,
चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥१४॥

अन्वयार्थ—(तेसिं) उन (गुणसायराण) गुणो के सागर (गुरुण) गुरु महाराज के (सुभासियाइ) सुभाषित उपदेश को (सुच्चाण) सुन कर (मेहावि) जो बुद्धिमान् (मुणी) साधु (पचरएत्तिगुत्तो) पाँच महाव्रत और तीन गुप्तियो से युक्त हो कर (चउक्कसायावगए) क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारो कषायो को छोड देता है और (चरे) गुरु महाराज की विनय-भक्ति करता हुआ शुद्ध सयम का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१४॥

गुरुमिह सययं पडियरिय मुणी,
जिणमयणिउणे अभिगमकुसले ।
धुणिय रयमलं पुरेकड,
भासुरमउलं गइं गओ ॥१५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ—(जिणमयणिउणे) निर्ग्रन्थ-प्रवचनो मे निपुण (अभिगमकुसले) ज्ञान मे कुशल विनीत एव साधुओ की विनय-

वैयावच्च करने वाला (मुणी) मुनि (इह) इस लोक मे (गुरु) गुरु महाराज की (सयय) निरन्तर (पडियरिय) सेवा कर के (पुरेकड) पूर्वकृत (रयमल) कर्म-रज को (धुणिय) क्षय कर के (भासुर) अनन्त ज्ञान ज्योति से देदीप्यमान (अउल) सर्वोत्कृष्ट (गइ) सिद्ध गति को (वइ-गय) प्राप्त करता है ॥१५॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ नौवे अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

उद्देशक ४

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता । कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ? इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा—१ विणयसमाही २ सुयसमाही ३ तवसमाही ४ आयारसमाही ।

अन्वयार्थ—श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि (आउस) हे आयुष्मन् जम्बू ! (तेण भगवया)

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एव) इस प्रकार (अक्खाय) फरमाया था वह (मे) मने (सुय) सुना है। यथा (इह खलु) जैन सिद्धान्त मे (थरेहिं) स्थविर (भगवतेहिं) भगवन्तो ने (विणयसमाहिट्ठाण) विनय-समाधि स्थान के (चत्तारि) चार भेद (पण्णत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवतेहिं) उन स्थविर भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाण) विनय-समाधि स्थान के (ते) वे (चत्तारि) चार भेद (कयरे) कौन-से (पण्णत्ता) बतलाये है? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि—हे आयुष्मन् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवतेहिं) भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाण) विनय-समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार भेद (पण्णत्ता) बतलाये है। (तजहा) जैसे कि—(विणयसमाही) विनय-समाधि (सुयसमाही) श्रुत-समाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि।

विणए सुए य तवे, आयारे णिच्च पडिया।
अभिरामयंति अप्पाणं, जे भवंति जिइंदिया ॥१॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (जिइदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय मे (सुए) श्रुत मे (तवे) तप मे (य) और (आयारे) आचार मे (णिच्च) सदा (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभिरामयति) लगाये रहते है (पडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवति) होते हैं ॥१॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ तंजहा—१अणु-

सासिज्जंतो सुस्सूसइ, २ सम्म संपडिवज्जइ, ३ वेयमारा-हयइ, ४ ण य भवइ अत्तसपग्गहिए। चउत्थ पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ— (विणयसमाहीखलु) विनय-समाधि (चउ-व्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तजहा) जैसे कि—१ (अणुसासिज्जतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उनको परमोपकारी जान कर (सुस्सूसइ) सदा सेवा-शुश्रूषा करना एव उनकी आज्ञा सुनने की इच्छा रखना। २ (सम्म सपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा सुन कर उनका अभिप्राय भली प्रकार समझना । ३ (वेयमाराहइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एव श्रुतज्ञान की आराधना करना। ४ (ण य भवइ अत्तसपग्गहिए) अभि-मान न करना एव आत्म-प्रशसा न करना (चउत्थ) यह चौथा (पय) भेद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है—

पेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसई तं च पुणो अहिट्ठए।
ण य माणमएण मज्जइ, विणयसमाहि आययट्ठिए ॥२॥

अन्वयार्थ—(आययट्ठिए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासण) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करे (च) और (त) गुरु की आज्ञा (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और (विणयसमाहि) विनयी

होने का (ण माणमएण मज्जई) अभिमान नहीं करे ॥२॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ तंजहा—१ सुयं मे भविस्सइ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ। २ एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ। ३ अप्पाणं ठावइस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ। ४ ठिओ परं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ। चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ—(सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तंजहा वे इस प्रकार हैं—१ (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुयं) श्रुतज्ञान का (भविस्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्वय भवइ) अध्ययन करे। २ अध्ययन करने से (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामित्ति) होगी—ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ३ (अप्पाण) मैं अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर करूंगा ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ४ (ठिओ) यदि मैं अपने धर्म मे स्थिर होऊँगा तो (पर) दूसरो को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर कर सकूंगा ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे (चउत्थ) यह अन्तिम चौथा (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) यहाँ (सिलोगो) श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है—

णाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ य ठावइ परं।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयमाहिए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सुयाणि) शास्त्रो का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (णाण) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म मे स्थिर करता है (य) और (पर) दूसरो को भी (ठावई) धम मे स्थिर करता है, इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुत-समाधि मे (रओ) सलग्न रहना चाहिए ॥३॥

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ, तंजहा—णो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, २ णो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ३ णो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ४ णण्णत्थ णिज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा। चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ—(तवसमाहि) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलुभवइ) है, (तजहा) वे इस प्रकार हैं—१ (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो के लिए एव किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तवं) तपस्या (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। २ (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो के लिए (तव) तपस्या (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। ३ (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तव) तपस्या (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। ४ (अणण्णत्थ-

णिज्जरट्ठयाए) कर्म-निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तव) तपस्या (णो अहिट्ठिज्जा) नहीं करे (चउत्थ) यह अन्तिम चतुर्थ (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) यहाँ (सिलोगो) श्लोक भी है। यथा—

विविहगुणतवोरए य णिच्चं, भवइ णिरासए णिज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥४॥

अन्वयार्थ—मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिये कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तप-समाधि मे (जुत्तो) संलग्न रहे तथा (णिच्च) निरतर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप मे रत रहता हुआ (णिरासए) इहलौकिक और पारलौकिक सुखो की आशा नही रखे किन्तु (णिज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिर्जरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावग) पूर्वसंचित पापकर्मों को (धुणइ) नष्ट कर देता है ॥४॥

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ तंजहा—णो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, २ णो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, ३ णो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, ४ णण्णत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठिज्जा। चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ—(आयारसमाही) आचार-समाधि के (चउ-

व्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं (तजहा) वे इस प्रकार हैं—(इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए एव लब्धि आदि प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो की प्राप्ति के (आयार) आचार का पालन (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण शब्द और श्लोक—श्लाघा के लिए भी (आयार) आचार का पालन (णो अहिट्ठिज्जा) नही करे। (आरहतेहिं हेऊहिं अण्णत्थ) जैन सिद्धान्त मे कहे हुए कारणो के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए भी (आयार) आचार का पालन (ण अहिट्ठिज्जा) नही करे, किन्तु आश्रवो के निरोध लिए ही आचार का पालन करे, क्योकि किसी प्रकार की आशा न रख कर आचार का करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है (चउत्थ) यह चतुर्थ (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) यहाँ (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। यथा—

जिणवयणरए अतितिणे, पडिपुण्णाययमाययट्ठिए।
आयारसमाहिसंवुडे, भवइ य दते भावसंधए ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिणवयणरए) जिन-वचनो मे रत रहने वाला (अतितिणे) कठोर वचन न बोलने वाला (पडिपुण्ण) शास्त्रो के तत्त्वो को भलीभाँति जानने वाला (आयय) निरन्तर (आययट्ठिए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दते) इन्द्रियो का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसं-

वुडे) आचार-समाधि से आश्रवो का निरोध करने वाला मुनि (भावसघएमवइ)शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥५॥

अभिगमचउरो समाहिओ,
सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ ।
विउलहियं सुहावह पुणो,
कुव्वइ य सो पयखेममप्पणो ॥६॥

अन्वयार्थ—(सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहिअप्पओ) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारो प्रकार की (समाहिओ) समाधियो के स्वरूप को (अभिगम) जान कर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावह) सुखकारी (पुणो) एव (खेम) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद (कुव्वइ) प्राप्त करता है ॥६॥

जाइमरणाओ मुच्चइ,
इत्थंथं च चएइ सव्वसो ।
सिद्धे वा हवइ सासए,
देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥७॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ—उपरोक्त गुणो को धारण करने वाला मुनि (इत्थथ) नरकादि पर्यायो का (सव्वसो) सर्वथा (चएइ) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतियो मे नही जाता (य)

किन्तु वह (जाइमरणाओ) जन्म-मरण के चक्कर से (मुच्चइ) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (हवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो अल्प कामविकार वाला उत्तम कोटि का (महिड्ढिए) महान् ऋद्धिशाली (देवे) अनुत्तर-विमानवासी देव होता है ॥७॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ नौवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'सभिक्खू' नामक दसवाँ अध्ययन

णिक्खममणाइ य बुद्धवयणे,
णिच्च चित्तसमाहिओ हविज्जा।
इत्थीण वस ण यावि गच्छे,
वंतं णो पडिआयइ जे स भिक्खू ॥१॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (आणाइ) महापुरुषो के उपदेश से (णिक्खम्म) दीक्षा ले कर (बुद्धवयणे) जिन-वचनो मे (णिच्च) सदा (चित्तसमाहिओ) स्थिर-चित्त वाला (हविज्जा) होता है (यावि) और (इत्थीण) स्त्रियो के (वस ण गच्छे) वशीभूत नही होता तथा (वंत) वमन किये हुए भोगो को (णो पडिआयइ) पुन. स्वीकार करने की इच्छा नही करता (स) वह (भिक्खू) शास्त्रोक्त विधि से तप द्वारा पूर्व-सचित कर्मों को भेदन करने वाला 'भिक्षु' कहलाता है ॥१॥

पुढविं ण खणे ण खणावए,
सीओदगं ण पिए ण पियावए।
अगणिसत्थ जहा सुणिसियं,
तं ण जले ण जलावए जे स भिक्खू ॥२॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (पुढविं) सचित्त पृथ्वी को (णखणे) स्वय नही खोदता (ण खणावए) दूसरो से नही खुदवाता और

खोदने वालो की अनुमोदना भी नही करता। जो (सीओदग) सचित्त जल (ण पिए) स्वय नही पीता (ण पियावए) दूसरो को नही पिलाता और पीने वालो की अनुमोदना भी नही करता (सत्थ जहा सुणिसिय) खड्गादि तीक्ष्ण शस्त्र के समान (त अगणि) अग्नि को (ण जले) स्वय नही जलाता (ण जलावए) दूसरो से नही जलवाता और जलाने वालो की अनुमोदना भी नही करता अर्थात् जो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय की तीन करण तीन योग से हिसा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥२॥

अणिलेण ण वीए ण वीयावए,
हरियाणि ण छिंदे ण छिंदावए ।
बीयाणि सया विवज्जयंतो,
सच्चित्तं णाहारए जे स भिक्खू ॥३॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (अणिलेण) पखे आदि से (ण वीए) स्वय हवा नही करता (ण वीयावए) दूसरो से हवा नही करवाता और हवा करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (हरियाणि) तरु, लता आदि वनस्पतिकाय का (ण छिंदे) छेदन नही करता (ण छिंदावए) दूसरो से छेदन नही करवाता और छेदन करने वालो की अनुमोदना भी नही करता और यदि (बीयाणि) मार्ग मे सचित्त बीज आदि पडे हो तो उन्हे (विवज्जंयतो) वर्ज कर—बचा कर चलता है और जो (सया) कभी भी (सच्चित्त) सचित्त वस्तु का (णाहारए) आहार नहीं

करता एव न दूसरो को कराता है और सचित्त वस्तु का आहार करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥३॥

वहण तसथावराण होइ,
पुढवीतणकट्ठणिस्सियाणं ।
तम्हा उद्देसियं ण भुंजे,
णो वि पए ण पयावए जे स भिक्खू ॥४॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (उद्देसिय) * औद्देशिक (ण भुजे) नही भोगता (ण पए) जो स्वय अन्नादि नही पकाता (णो वि पयावए) ण दूसरों से पकवाता है और पकाने वालो की अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है (तम्हा) क्योकि भोजन पकाने से (पुढवीतण कट्ठणिस्सियाण) पृथ्वी, तृण और काष्ठ के आश्रय मे रहे हुए (तसथावराण) त्रस और स्थावर जीवो की (वहण) हिसा (होइ) होती है, इसलिए भिक्षु ऐसी प्रवृत्ति नही करता ॥४॥

रोइअ णायपुत्तवयणे,
अत्तसमे मण्णिज्ज छप्पिकाए।
पंच य फासे महव्वयाइं,
पंचासव संवरे जे स भिक्खू ॥५॥

* किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधाकर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक ।

अन्वयार्थ—(जे) जो (णायपुत्तवयणे) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो को (रोइअ) श्रद्धा एव रुचि पूर्वक ग्रहण कर के (छप्पिकाए) छ जीवनिकाय को (अत्तसमे) अपनी आत्मा के समान (मण्णिज्ज) मानता है (पच) पाँच (महव्वयाइ) महाव्रतो की (फासे) सम्यक् आराधना करता है (य) और (पचासव सवरे) पाँच आश्रवो का निरोध करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ॥५॥

चत्तारि वमे सया कसाए,
धुवजोगी हविज्ज बुद्धवयणे ।
अहणे णिज्जायरूवरयए,
गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू ॥६॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (चत्तारि) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो (कसाए) कषायो को (वमे) त्यागता है (बुद्धवयणे) तीर्थंकर देवों के प्रवचनो में (सया) सदा (धुवजोगी) ध्रुव-योगी—अटल श्रद्धा रखने वाला (हविज्ज) होता है (अहणे णिज्जायरूवरयए) जिसने गाय, भैंस आदि चतुष्पदादि धन तथा सोना चाँदी आदि सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है और (गिहिजोग) जो गृहस्थों के साथ अति परिचय (परि-वज्जए) नही रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ।

सम्मदिट्ठी सया अमूढे,
अत्थि हु णाणे तवे संजमे य ।

तवसा धुणइ पुराणपावगं,
मणवयकायसुसंवुडे जे स भिक्खू ॥७॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि है (य) और (णाणेतवे सजमे) ज्ञान, तप, सयम के विषय मे जो (सया) सदा (हु) पूर्ण (अमूढे) श्रद्धा एव दृढ विश्वास (अत्थि) रखता है (मण वय काय सुसवुडे) मनोगुप्ति, वचन-गुप्ति और कायगुप्ति से युक्त है और जो (तवसा) तपस्या द्वारा (पुराणपावग) पूर्वोपार्जित पाप-कर्मों को (धुणइ) नष्ट करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥७॥

तहेव असणं पाणगं वा,
विविह खाइमं साइमं लभित्ता ।
होही अट्ठो सुए परे वा,
तं ण णिहे ण णिहावए जे स भिक्खू ॥८॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थों को (लभित्ता) प्राप्त कर के (सुए) कल (वा) अथवा (परे) परसो या और कभी (अट्ठो होही) यह पदार्थ काम आयेगा ऐसा विचार कर जो (त) उसको (ण णिहे) सग्रह कर वासी नही रखता (ण णिहावए) दूसरो से वासी नही रखवाता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ॥८॥

...र्म-सौंदर्य के
...के ज्ञान

तहेव असणं पाणगं वा,
विविहं खाइम साइमं लभित्ता।
छंदिय साहम्मियाण भुंजे,
भुच्चा सज्झायरए जे सभिक्खू ॥९॥

अन्वयार्थ—(तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थ (लभित्ता) प्राप्त कर के (साहम्मियाण) अपने स्वधर्मी साधुओ को (छंदिय) बुला कर (भुजे) भोजन करता है और (भुच्चा) भोजन करने के वाद (सज्झायरए) स्वाध्यायादि मे रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥९॥

ण य वुग्गहियं कहं कहिज्जा,
ण य कुप्पे णिहुइंदिए पसते।
संजमे धुवं जोगेण जुत्ते,
उवसते अविहेडए जे स भिक्खु ॥१०॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (वुग्गहिय) कलह उत्पन्न करने वाली (कह) कथा (ण य कहिज्जा) नही कहता (ण य कुप्पे) किसी पर क्रोध नही करता (णिहुइदिए) इन्द्रियो को सदा वश मे रखता है (पसते) मन को शान्त रखता है (सजमे धुव जोगेणजुते) जो सयम मे सदा तल्लीन रहता है (उवसते) कष्ट पडने पर भी जो आकुल-व्याकुल नही होता

(अविहेडए) और कालोकाल करने योग्य पडिलेहणादि मे जो उपेक्षा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु ॥१०॥

जो सहइ उ गामकंटए,
अक्कोसपहारतज्जणाओ य।
भयभेरवसद्दसप्पहासे,
समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥११॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (गामकटए) श्रोतादि इन्द्रियो को काँटे के समान दु ख उत्पन्न करने वाले (अक्कोसपहार तज्ज-णाओ) कठोर वचन, प्रहार और ताडना-तर्जनादि (उ) समभाव पूर्वक (सहइ) सहन कर लेता है (य) और (भय-भेरवसद्दसप्पहासे) जहाँ अत्यन्त भय को उत्पन्न करने वाले भूत-वेताल आदि के भयकर शव्द होते हो, ऐसे स्थानो मे भी (जे) जो निर्भय हो कर ध्यानादि मे निश्चल वना रहता है (य) और (समसुहदुक्ख सहे) जो सुख-दु ख को समान समझ कर समभाव रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है।

पडिमं पडिवज्जिया मसाणे,
णो भीयए भयभेरवाइं दिस्स ।
विविहगुणतवोरए य णिच्च,
ण सरीर चाभिकंखए जे स भिक्खू ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (णिच्च) सदा (विविह गुणतवोरए) नाना प्रकार के मूल-गुण उत्तर-गुणो मे रत रहता है (य) और

(मंसो ओ) और श्मशान-भूमि मे (पडिम) मासिकी आदि भिक्षु-प्रतिमा को (पडिवज्जिया) स्वीकार कर के ध्यान मे खडा हुआ जो मुनि (भयभेरवाइ) भूत-वेताल आदि के भयकर रूपो को (दिस्स) देख कर एव भयकर शव्दो को सुन कर भी (णो भीयए) नही डरता है (च) तथा (सरीर) जो शरीर पर भी (ण अभिकखए) ममत्व भाव नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१२॥

असइं　　　वोसट्ठचत्तदेहे,
अक्कुट्ठे व हए लूसिए वा ।
पुढविसमे मुणी हविज्जा,
अणियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (मुणी) मुनि (असइ) कभी भी (वोसट्ठचत्तदेहे) शरीर की विभूषा नही करता एव शरीर पर ममत्व भी नही रखता (अक्कुट्ठे) कठोर वचनो द्वारा आक्षेप किया जाने पर (व) अथवा (हए) लकडी आदि से पीटे जाने पर (वा) अथवा (लूसिए) शस्त्रादि से छेदन किये जाने पर भी जो (पुढविसमे हविज्जा) पृथ्वी के समान समभावपूर्वक सहन करता है (अणियाणे) जो किसी तरह का निदान नही करता तथा (अकोउहल्ले) नाच-गान आदि मे रुचि नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१३॥

अभिभूय काएण परिसहाइं,
समुद्धरे जाइपहाउ अप्पयं ।

विइत्तु जाइमरणं महब्भयं,
तवे रए सामणिए जे स भिक्खू ॥१४॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (काएण) शरीर मे (परीसहाइ) परीषहो को (अभिभूय) जीत कर (जाइपहाउ) ससार-समुद्र से (अप्पय) अपनी आत्मा का (समुद्धरे) उद्धार कर लेता है तथा (जाईमरण) जन्म-मरण को (महब्भय) महा भयकारी एव अनन्त दुखो का कारण (विइत्तु) जान कर (सामणिए) सयम और (तवे) तप मे (रए) रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१४॥

हत्थसंजए पायसंजए,
वायसंजए सजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (हत्थसंजए) हाथो से सयत है (पाय-सजए) पावो से सयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवो को कछुए की तरह सकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक कार्य करता है (वायसजए) जो वचन से संयत है अर्थात् किसी को सावद्य एव पीडाकारी वचन नही कहता तथा (सजइदिए) जो सभी इन्द्रियो को वश मे रखता है (अज्झप्परए) अध्यात्म रस मे एव धर्मध्यान शुक्लध्यान मे रत रहता है (सुसमाहि अप्पा) जो सयम मे अपनी आत्मा

को संगो[illegible] रखता है (च) और (सुत्तत्थ) जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से (वियाणइ) जानता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१५॥

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे,
अण्णायउछं पुलणिप्पुलाए ।
कयविक्कयसंणिहिओ विरए,
सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू ॥१६॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (उवहिम्मि) वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि धर्मोपकरणो मे (अमुच्छिए) मूर्च्छाभाव नही रखता (अगिद्धे) जो किसी भी पदार्थ मे गृद्धिभाव नही रखता एव सासारिक प्रतिवन्धो से अलग रहता है (अण्णायउछ) भिक्षा एव उपकरणादि भी अज्ञात घरो से मांग कर लाता है (पुलणिप्पुलाए) सयम को दूषित करने वाले दोषो का सेवन कदापि नही करता (कयविक्कयसणिहिओ विरए) खरीदना, बेचना, सग्रह करना आदि व्यापारिक कार्यो से जो सदा विरक्त रहता है (य) और (सव्वसगावगए) जो सभी सगो एव आसक्तियो को छोड देता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ।१६।

अलोलभिक्खू ण रसेसु गिज्झे,
उंछं चरे जीविय-णाभिकंखे ।
इड्ढि च सक्कारणपूयण च,
चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥१७॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (भिक्खू) साधु (अलोलुए) लोलुपता से रहित हो कर (रसेसु) किसी भी प्रकार के रसो मे (ण गिज्झे) आसक्त नही होता (उछ) अज्ञात घरो से (चरे) गोचरी करता है अर्थात् अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी सयम-यात्रा का निर्वाह करता है (जीविय णाभिकखे) मरणात कष्ट पडने पर भी जो असयमी जीवन की इच्छा नहीं करता (च) और जो (इड्ढि) ऋद्धि (सक्कारणपूयण च) सत्कार और पूजा-प्रतिष्ठा (चए) नही चाहता और (अणिहे) जो माया-कपट रहित हो कर (ठिअप्पा) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ॥१८॥

ण परं वइज्जासि अयं कुसीले,
जेणं च कुप्पिज्ज ण तं वइज्जा ।
जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं,
अत्ताणं ण समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (पर) दूसरे किसी भी व्यक्ति को (अय) यह (कुसीले) दुराचारी है ऐसा (ण वइज्जासि) वचन नही बोलता (च) और (जेण) ऐसे वचन जिन्हे सुन कर (कुप्पिज्ज) दूसरो को क्रोध उत्पन्न हो (त) वैसे वचन (ण वइज्जा) कभी नही बोलता (पत्तेय) प्रत्येक जीव (पुण्णपाव) अपने-अपने पुण्य-पाप—शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं (जाणिय) ऐसा जान कर जो अपने ही दोषो को दूर करता है तथा (अत्ताण) अपने-आपको (ण समुक्कसे) सव

से बढ़ [illegible] उत्कृष्ट मान कर जो अभिमान नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ॥१८॥

ण जाइमत्ते ण य रूवमत्ते,
ण लाभमत्ते ण सुएणमत्ते ।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता,
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥१९॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (ण जाइमत्ते) जाति का मद नही करता (ण रूवमत्ते) रूप मद नही करता (ण लाभमत्ते) लाभ का मद नही करता (य) और (ण सुएण मत्ते) श्रुत-ज्ञान का मद नही करता (सव्वाणि) इस प्रकार सभी (मयाणि) मदो को (विवज्जइत्ता) छोड कर (धम्मज्झाणरए) धर्मध्यान मे सदा लीन रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।१९।

पवेयए अज्जपय महामुणी,
धम्मे ठिओ थावयई परं पि ।
णिक्खम्म वज्जिज्ज कुसीललिंगं,
ण यावि हासं कुहए जे य भिक्खू ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जे) जो (महामुणी) महामुनि (अज्जपय) आर्य-पद—परोपकार की दृष्टि से शुद्ध एव सच्चे धर्म का (पवेयए) उपदेश देता है (धम्मे) जो स्वय अपनी आत्मा को सद्धर्म मे (ठिओ) स्थिर कर के (पर पि) दूसरो को भी (ठावयई) धर्म मे स्थिर करता है (णिक्खम्म) दीक्षा लेकर (कुसीललिंग)

आरम्भ-समारम्भ रूप गृहस्थ की क्रिया को एव धुंआ के सग को जो (वज्जिज्ज) छोड देता है (यावि) और (ण हास (कुहए) हास्य को उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाएँ एव ठट्ठा-मसकरी आदि नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु है ॥२०॥

तं देहवासं असुइ असासयं,
सया चए णिच्च हियट्ठिअप्पा ।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बधणं,
उवेइ भिक्खू अपुणागमं गइं ॥ २१॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ---(णिच्चहियट्ठिअप्पा) मोक्ष रूपी हित एवं कल्याण मार्ग मे सदा अपनी आत्मा को स्थिर रखने वाला (भिक्खू) साधु (त) इस (असुइ) अपवित्र और (असासय) अशाश्वत (देहवास) शरीर को (सया) सदा के लिए (चए) छोड कर तथा (जाईमरणस्स) जन्म-मरण के (बधण) बन्धन को (छिंदित्तु) काट कर (अपुणागम) पुनरागमन रहित अर्थात् जहाँ जा कर फिर ससार मे लौटना न पडे ऐसी (गइ) सिद्धगति को (उवेइ) प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ (त्ति बेमि) श्रीसुधर्मा-स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते है कि—हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर से जैसा मैने सुना है वैसा ही तुझे कहा है। मैने अपनी बुद्धि से कुछ नही जोड़ा है ।

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

...वाक्य ' नामक प्रथम चूलिका

इह खलु भो ! पव्वइएणं उप्पण्णदुक्खेणं संजमे अरइसमावण्णचित्तेणं ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएणं चेव हयरस्सि-गयंकुस-पोयपडागाभूयाइ इमाइं अट्ठारस-ठाणाइं सम्मं सपडिलेहियव्वाइ भवंति ।

अन्वयार्थ—गुरु महाराज कहते है कि—(भो) हे शिष्यो ! (पव्वइएण) दीक्षा लेने के बाद (उप्पण्ण दुक्खेण) किसी समय शारीरिक एव मानसिक कष्ट आ पडने पर यदि कदाचित् (सजमे) सयम मे (अरइसमावण्ण चित्तेण) अरति उत्पन्न हो जाय अर्थात् सयम मार्ग मे चित्त का प्रेम न रहे और (ओहा-णुप्पेहिणा) सयम छोड कर वापिस गृहस्थाश्रम मे चले जाने की इच्छा होती हो तो (अणोहाइएण चेव) सयम छोडने के पहले साधु को (इह खलु इमाइ) इन (अट्ठारस ठाणाइ) अठा-रह स्थानो का (सम्म) खूब अच्छी तरह से (सपडिलेहियव्वाइ भवति) विचार करना चाहिये क्योकि (हयरस्सि गयकुसपोय-पडागाभूयाइ) जिस प्रकार लगाम से चचल घोडा वश मे आ जाता है, अकुश से मदोन्मत्त हाथी वश मे आजा है, मार्ग भूल कर समुद्र मे इधर-उधर गोते खाती हुई नाव पतवार द्वारा ठीक रास्ते पर आ जाती है, उसी प्रकार आगे कहे जानेवाले

अठारह स्थानो पर विचार करने से चञ्चल एव [illegible] बना हुआ साधु का चित्त भी सयम मे पुन स्थिर हो जाता है।

तं जहा–ह भो ! १ दुस्समाए दुप्पजीवी ।

अन्वयार्थ—(तजहा) वे अठारह स्थान इस प्रकार है—(हभो) अपनी आत्मा को सम्बोधित कर इस प्रकार विचार करना चाहिए कि—हे आत्मन् (दुस्समाए) इस दु पम-काल का जीवन ही (दुप्पजीवी) दु खमय है ।

२ लहुस्सगा इत्तरिया गिहीण कामभोगा ।

अन्वयार्थ— इस दु पम-काल मे (गिहीण) गृहस्थ लोगो के (कामभोगा) काम भोग (लहुस्सगा) तुच्छ और (इत्तरिया) अल्पकालीन हैं।

३ भुज्जो असाइबहुला मणुस्सा ।

अन्वयार्थ— (भुज्जो य) और (मणुस्सा) इस दु पम-काल के बहुत-से मनुष्य (साइबहुला) बडे कपटी एव मायावी होते हैं।

४ इमे य मे दुक्खे ण चिरकालोवट्ठाई भविस्सई ।

अवयान्थ— (मे) मुझे (दुक्खे) जो दु ख उत्पन्न हुआ है (इमे य) वह (ण चिरकालोवट्ठाई) बहुत काल तक नही रहेगा।

५ ओमजणपुरक्कारे ।

अन्वयार्थ—(ओमजणपुरक्कारे) सयम छोड कर गृहस्थाश्रम मे जाने वालो को नीच से नीच पुरुषो की चापलूसी एव सेवा करनी पड़ती है।

...स य पडियाइयणं ।

अन्वयार्थ-- (य) और (वतस्स) सयम को छोड कर गृहस्थाश्रम मे जाने से जिन पदार्थों का एक बार वमन—त्याग कर दिया है (पडिआयण) उन्ही का फिर सेवन करना पडेगा ।

७ अहरगईवासोवसंपया ।

अन्वयार्थ— (अहरगइ वासोवसपया) सयम छोड कर गृहस्थाश्रम मे जाना मानो साक्षात् नरक गति मे जाने की तैयारी करने के समान है ।

८ दुल्लहे खलु भो! गिहीणं धम्मे गिहिवासमज्झे वसंताणं ।

अन्वयार्थ— (भो) हे आत्मन् ! (गिहवास मज्झे) गृहस्थाश्रम रूप पाश मे (वसताण) जकडे हुए (गिहीण) गृहस्थो के लिए (धम्मे) धर्म का पालन करना (खलु दुल्लहे) निश्चय ही कठिन है ।

९ आयके से वहाय होइ ।

अन्वयार्थ— (आयके) यह शरीर रोगो का घर है, इसमे अचानक रोग उत्पन्न हो जाते है (से) वे रोग तत्काल (वहाय होइ) मृत्यु के मुख मे पहुँचा देते हैं । उस समय धर्म के अतिरिक्त कोई भी इस जीव का सहायक नही होता ।

१० संकप्पे से वहाय होइ ।

अन्वयार्थ— (सकप्पे) इष्ट-वियोग और अनिष्ट-सयोग से सदा सकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहते है (से) इससे उसका

(वहाय) अहित (होइ) होता है और आत्त[illegible] ध्यान बना रहता है।

११ सोवक्केसे गिहिवासे, णिरुवक्केसे परियाए।

अन्वयार्थ— (गिहवासे) गृहस्थाश्रम (सोवक्केसे) क्लेश युक्त है और (परियाए) सयम (णिरुवक्केसे) क्लेश-रहित है क्योकि सच्ची शाति त्याग मे ही है।

१२ बधे गिहिवासे, मुक्खे परियाए।

अन्वयार्थ— (गिहिवासे) गृहस्थावास (बधे) बन्धन रूप है—कर्मों के बन्धन का स्थान है और (परियाए) सयम (मुक्खे) मोक्ष रूप है अर्थात् कर्मों से छुडाने वाला है, क्योकि त्याग से ही मुक्ति होती है।

१३ सावज्जे गिहिवासे, अणवज्जे परियाए।

अन्वयार्थ— (गिहवासे) गृहस्थवास (सावज्जे) पाप स्थान है और (परियाए) सयम (अणवज्जे) निष्पाप एव पवित्र है।

१४ बहुसाहारणा गिहिणं कामभोगा।

अन्वयार्थ— (गिहीण) गृहस्थो के (कामभोगा) कामभोग (बहुसाहारणा) तुच्छ एव साधारण हैं।

१५ पत्तेयं पुण्णपाव।

अन्वयार्थ— (पत्तेय) प्रत्येक प्राणी के (पुण्णपाव) पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोगते हैं।

कृष्ण-काव... आ का निरूपण ... क जीवन मे

ता का वात... वैकालिक सूत्र पू. किया ? ... समा

-सौंदर्य के प्र...

रके ज्ञान वैर...

गनो और स... मे ज...

...णिच्चं खलु भो ! मणुयाण जीवियं कुसग्ग-जलबिंदुचंचलं।

अन्वयार्थ—(भो) हे आत्मन् ! (मणुयाण) मनुष्यो का (जीविए) जीवन (कुसग्गजलबिंदु चचले) कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जलबिंदु के समान अति चचल है (अणिच्चे खलु) अनित्य एव क्षणिक है।

१७ बहु च खलु भो ! पावं कम्मं पगडं।

अन्वयार्थ— (च) और (भो) हे आत्मन् ! (खलु) निश्चय ही मैने (बहु) बहुत (पाव कम्म) पाप-कर्म (पगड) किये है अथवा मेरे बहुत ही प्रबल पापकर्मो का उदय है, इसीलिए सयम छोड देने के निन्दनीय विचार मेरे हृदय मे उत्पन्न हो रहे हैं।

१८ पावाणं च खलु भो ! कडाणं कम्माणं पुव्वि दुच्चिण्णाणं दुप्पडिकताणं वेयइत्ता मुक्खो, 'णत्थि अवेयइत्ता' तवसा वा झोसइत्ता। अट्ठारसमं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ—(च) और (भो) हे आत्मन् ! (दुच्चिण्णाण) दुष्ट भावो से (दुप्पडिकताण) तथा मिथ्यात्व आदि से (कडाण) उपार्जन किये हुए (पुव्वि पावाण कम्माण) पहले के पाप-कर्मो के फल को (वेइत्ता) भोगने के बाद ही मोक्ष होता है, किन्तु (अवेइत्ता) कर्मो का फल भोगे बिना (णत्थि) मोक्ष नही होता (व) अथवा (तवसा) तप द्वारा (झोसइत्ता)

कर्मो का क्षय कर देने पर ही मोक्ष होता है (इह) यह अठारहवाँ (पय) पद (भवइ) है (अ) और (इत्थ) इसमें अठारह विषयो पर (सिलोगो) श्लोक भी (भवइ) हैं, वे इस प्रकार है।

जया य चयइ धम्मं, अणज्जो भोगकारणा ।
से तत्थ मुच्छिए वाले,आयइ णावबुज्झइ ॥१॥

अन्वयार्थ—(जया य) जब (अणज्जो) कोई अनार्य पुरुष (भोगकारणा) भोगो की इच्छा से (धम्म) सयम को (चयई) छोडता है तब (तत्थ) कामभोगो मे (मुच्छिए) आसक्त बना हुआ (से) वह (वाले) अज्ञानी (आयइ) भविष्यत् काल के लिए (णावबुज्झइ) जरा भी विचार नही करता ॥१॥

जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छम ।
सव्वधम्म-परिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥२॥

अन्वयार्थ—(वा) जिस प्रकार स्वर्गलोक से च्यवकर (छम) पृथ्वी पर (पडिओ) उत्पन्न होने वाला (इदो) इन्द्र अपनी पूर्व ऋद्धि को याद कर पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार (जया) जब कोई साधु (ओहाविओ) सयम से भ्रष्ट हो कर (सव्व-धम्म परिब्भट्ठो) सब धर्मो से भ्रष्ट (होइ) हो जाता है तब (स) वह (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।२।

जया य वदिमो होइ, पच्छा होइ अवदिमो ।
देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ ॥३॥

अन्वयार्थ—(जया) जब साधु सयम मे रहता है, तब तो (वदिमो) वह सब लोगो का वन्दनीय (होइ) होता है, (य)

सयम छोड देने के वाद वही (अवदिमो) अवन्दनीय (होइ) हो जाता है (ठाणा चुया देवया य) जिस प्रकार इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चात्ताप करती है, उसी प्रकार (स) वह सयम-भ्रष्ट साधु (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥३॥

जया य पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो ।
राया य रज्ज-पब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥४॥

अन्वयार्थ—(जया) जब साधु सयम मे रहता है, तब तो (पूइमो) सभी लोगो से पूजनीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद (अपूइमो) अपूजनीय (होइ) हो जाता है (रज्जपब्भट्ठो राया व) जिस प्रकार राज्य-भ्रष्ट राजा पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार (स) वह साधु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥४॥

जया य माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो ।
सेट्ठिव्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पइ ॥५॥

अन्वयार्थ—(जया) जब साधु सयम मे रहता है, तब तो (माणिमो) सभी लोगो का माननीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (अमाणिमो) अमाननीय (होइ) हो जाता है (कब्बडे) जिस प्रकार छोटे से गाँव मे (छूढो) अनिच्छा पूर्वक रखा हुआ (सिट्ठिव्व) सेठ पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार (स) वह सयम-भ्रष्ट साधु

भो (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ...

जया य थेरओ होइ, समइक्कंत जुव्वणो।
मच्छुव्व गल गिलित्ता, स पच्छा परितप्पइ।६।

अन्वयार्थ—(मच्छुव्व) जिस प्रकार लोहे के काँटे पर लगे हुए मास को खाने के लिए मच्छी उस पर झपटती है किन्तु (गल गिलित्ता) गले मे काँटा फँस जाने के कारण पश्चात्ताप करती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है, इसी प्रकार (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हुआ साधु (समइक्कत जुव्वणो) यौवन अवस्था के वीत जाने पर (जया य) जव (थेरओ) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब (स) वह (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार मछली न तो उस लोह के काँटे को गले से नीचे उतार सकती है और न गले से वाहर निकाल सकती है, उसी प्रकार वह सयम-भ्रष्ट वृद्ध साधु भी न तो भोगो को भोग सकता है और न उन्हे छोड सकता है। यो ही कष्ट-मय जीवन समाप्त कर के मृत्यु के मुख मे पहुँच जाता है।

जया य कुकुडुंबस्स, कुतत्तीहि विहम्मइ।
हत्थी व बधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पइ ॥७॥

अन्वयार्थ—विषय-भोगो के झूठे लालच मे फँस कर, सयम से पतित होने वाले साधु को (जया य) जव (कुकुडुवस्स) अनुकूल परिवार एव इष्ट सयोगो की प्राप्ति नही होती तव (कुतत्तीहि) वह आर्त्त-रौद्रध्यान करता हुआ अनेक प्रकार की

(... विहम्मइ) चिन्तित रहता है और (बधणे) वन्धने [illegible] बद्धो) बधे हुए (हत्थी व) हाथी के समान (स) वह (पच्छा) पीछे बारबार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।

पुत्तदारपरिकिण्णो, मोहसंताणसंतओ ।
पंकोसण्णो जहा णागो, स पच्छा परितप्पइ ॥८॥

अन्वयार्थ—(पुत्तदारपरीकिण्णो) पुत्र-स्त्री आदि से घिरा हुआ और (मोहसताण सतओ) मोह पाश मे फँसा हुआ (स) वह सयम-भ्रष्ट साधु (पकोसण्णो) कीचड मे फँसे हुए (जहा णागो) हाथी के समान (पच्छा) पीछे बारबार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥८॥

अज्ज आहं गणी हुंतो, भावियप्पा बहुस्सुओ ।
जइऽहं रमंतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए ॥९॥

अन्वयार्थ—सयम से पतित हुआ कोई साधु इस प्रकार विचार करता है कि (जइऽह) यदि मै साधुपना नही छोडता और (भावियप्पा) भावितात्मा हो कर (जिणदेसिए) जिनेश्वर देवो द्वारा प्ररूपित (सामण्णे परियाए) साधु धर्म का (रमतो) पालन करता हुआ (बहुस्सुओ) शास्त्रो का अभ्यास करता रहता तो (अज्ज) आज (अह) मै (गणी) आचार्य पद पर (हतो) सुशोभित होता ॥९॥

देवलोगसमाणो व, परियाओ महेसिणं ।
रयाणं अरयाणं च, महाणरयसारिसो ॥१०॥

अन्वयार्थ—(महेसिण) जो महर्षि (रयाण) [illegible] रहते है, उनके लिए (परियाओ) सयम (देवलोगसमाणो य) देवलोक के सुखो के समान आनन्ददायक है (च) किन्तु (अर-याण) सयम मे रुचि नही रखने वालो को (महाणरय सारिसो) सयम, नरक के समान दु खदायी प्रतीत होता है ॥१०॥

अमरोवम जाणिय सुक्खमुत्तम,
रयाण परियाइ तहाऽरयाण ।
णरओवमं जाणिय दुक्खमुत्तमं, ।
रमिज्ज तम्हा परियाइ पंडिए ॥११॥

अन्वयार्थ—(परियाइ) सयम मे (रयाण) रत रहने वाले महात्माओ के लिए सयम (अमरोवम) देवलोक के (उत्तम) श्रेष्ठ (सुक्ख) सुखो के समान आनन्द-दायक होता है (जाणिय) ऐसा जान कर (तहा) तथा (अरयाण) सयम मे रुचि नहीं रखने वालो को वही सयम (णरओवम) नरक के (उत्तम) घोर (दुक्ख) दु.खो के समान दुखदायी प्रतीत होता हे (तम्हा) ऐसा (जाणिय) जान कर (पडिए) बुद्धिमान् साधु को (परि-याइ) सयम मार्ग मे ही (रमिज्ज) रमण करना चाहिए ।११।

धम्माउ भट्ठ सिरिओ अवेयं,
जणग्गि विज्झायमिवऽप्पतेयं ।
हीलंति णं दुव्विहियं कुसीला,
दाढुड्ढियं घोरविसं व णागं ॥१२॥

—(जणग्गि) यज्ञ की अग्नि जब तक जलती रहती [है तब] तक उसे पवित्र समझ कर अग्निहोत्रीब्राह्मण उसमे घृतादि डालते है और प्रणाम करते हैं, किन्तु (विज्झाअ) जब वह बुझ कर (अप्पत्तेय) तेज रहित हो जाती है, तब उसकी राख को बाहर फेक देते हैं, तथा (घोरविस व) जब तक साँप के मुंह मे भयकर विष को धारण करने वाली दाढें मौजूद रहती है, तब तक सभी लोग उससे डरते हैं, किन्तु (दाढुड्ढिय) जब उसकी वे दाढें, मदारी द्वारा निकाल दी जाती हैं तब उससे कोई नही डरता, प्रत्युत छोटे-छोटे बच्चे भी (णाग) उस सर्प को छेडते है और अनेक प्रकार का कष्ट पहुँचाते हैं। (इव) इसी प्रकार जब तक साधु सयम का यथावत् पालन करता हुआ तप रूपी तेज से दीप्त रहता है, तब तक सभी लोग उसकी विनय-भक्ति एव सत्कार-सम्मान करते हैं, किन्तु जब वही साधु (धम्माउ) सयम से (भट्ठ) भ्रष्ट हो जाता है और (सिरिओ) तप रूपी लक्ष्मी से (अवेय) रहित हो कर (दुव्विहिय) अयोग्य आचरण करने लग जाता है, तब (कुसीला) आचार-हीन समान्य लोग भी (ण) उसकी (हीलति) अवहेलना एवं तिरस्कार करने लग जाते है ॥१२॥

इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती,
दुण्णामधिज्जं च पिहुज्जणम्मि ।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो,
सभिण्णवित्तस्स य हिट्ठओ गई ॥१३॥

अन्वयार्थ—(धम्माउ) सयम धर्म से [illegible] (अहम्म सेविणो) अधर्म का सेवन करने वाला [illegible] (संभिन्नवित्तस्स) ग्रहण किये हुए व्रतो को खण्डित करने वाला साधु (इहेव) इस लोक मे (अधम्मो) अधर्म (अयसो) अपयश (य) और (अकित्ती) अकीर्ति को प्राप्त होता है (च) और (पिहुज्जणम्मि) साधारण लोगो मे भी (दुण्णामधिज्ज) वदनामी एव तिरस्कार को प्राप्त होता है तथा (हिट्ठओ गई) परलोक मे नरकादि नीच गतियो मे उत्पन्न हो कर असह्य दु ख भोगता है ॥१३॥

भुंजित्तु भोगाइं पसज्झचेयसा,
तहाविहं कट्टु असजम बहु ।
गइं च गच्छे अणहिज्जियं दुहं,
बोही य से णो सुलहा पुणो पुणो ॥१४॥

अन्वयार्थ—(पसज्झ चेयसा) तीव्र लालसा एव गृद्धिभाव पूर्वक (भोगाइ) भोगो को (भुजित्तु) भोग कर (च) तथा (बहु) वहुत-से (तहाविह असजम) असयम पूर्ण निन्दनीय कार्यो का (कट्टु) आचरण कर के जव वह सयम-भ्रष्ट साधु काल-धर्म को प्राप्त होता है तव (अणहिज्जिय) अनिष्ट (गइ) नरकादि गतियो मे (गच्छे) जाकर (दुह) अनेक दु ख भोगता है (य) और (से) उसे (पुणो पुणो) अनेक भवो मे भी (बोही) वोधवीज—समकित एव जिनधर्म की प्राप्ति होना (णो सुलहा) सुलभ नही है ॥१४॥

स्स ता णेरइयस्स जंतुणो,
होवणीयस्स किलेसवत्तिणो।
पलिओवमं झिज्झइ सागरोवमं,
किमंग पुण मज्झ इम मणोदुह ॥१५॥

अन्वयार्थ—सयम मे आने वाले आकस्मिक कष्टो से घबरा कर सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को विचार करना चाहिए कि (णेरइयस्स) नरको मे अनेक बार उत्पन्न हो कर (इमस्स जतुणो) मेरे इस जीव ने (किलेसवत्तिणो) अनेक क्लेश एव (दुहोवणियस्स) असह्य दु ख सहन किय हैं (पलिओवम) वहाँ की पल्योपम और (सागरोवम) सागरोपम जैसी दु खपूर्ण लम्बी आयु को भी (झिज्झइ) समाप्त कर वहाँ से निकल आया है (ता पुण) तो फिर (मज्झ) मेरा (इम) यह (मणोदुहं) चारित्र विषयक मानसिक दु ख तो (किमग) है ही क्या चीज ? अर्थात् नरको मे पल्योपम तथा सागरोपम की लम्बी आयुष्य तक निरन्तर मिलने वाला अनन्त दु ख कहाँ, और इस सयमी जीवन मे कभी-कभी आया हुआ थोडा-सा आकस्मिक दु.ख कहाँ ? इन दोनो मे महान् अन्तर है। ऐसा सोच कर साधु को समभावपूर्वक कष्ट सहन करना चाहिए ॥१५॥

ण मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सइ,
असासया भोगपिवास जंतुणो।

ण चे सरीरेण इमेणऽविस्सई [illegible]
अविस्सई जीवियपज्जवेण मे [illegible]

अन्वयार्थ—दु ख से घवरा कर सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को ऐसा विचार करना चाहिए कि (मे) मेरा (इण) यह (दु ख) दु ख (चिर) वहुत काल तक (ण भविस्सइ) नही रहेगा—भोग भोगने की लालसा से सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को विचार करना चाहिए कि (ज़तुणो) जीव की (भोग-पिवास) भोग-पिपासा—विषय-वासना (असासया) अशाश्वत है (चे) यदि यह विषय-वासना (इमेण) इस (सरीरेण) शरीर मे शक्ति रहते (ण अविस्सइ) नष्ट न होगी तो (मे) मेरी वृद्धावस्था आने पर अथवा (जीवियपज्जवेण) मृत्यु आने पर तो (अविस्सई) अवश्य नष्ट हो जायगी अर्थात् जव यह शरीर ही अनित्य है तो विषय-वासना नित्य किस प्रकार हो सकती है ? ॥१६॥

जस्सेवमप्पा उ हविज्ज णिच्छिओ,
चइज्ज देहं ण हु धम्मसासणं ।
तं तारिस णो पइलंति इंदिया,
उविंतवाया व सुदंसणं गिरिं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(एव) उपरोक्त रीति से विचार करने से (जस्स) जिसकी (अप्पा) आत्मा धर्म पर (उ) इतनी (णिच्छिओ) दृढ (हविज्ज) हो जाती है कि अवसर पडने पर वह धर्म पर (देह) अपने शरीर की (चइज्ज) प्रसन्नता पूर्वक

[illegible] है (हु) किन्तु (ण धम्मसासण) धर्म का त्याग [illegible] केवल [illegible]। (व) जिस प्रकार (उवितवाया) प्रलय काल की प्रचण्ड वायु भी (सुदसण गिरिं) सुमेरु पर्वत को चलित नही कर सकती उसी प्रकार (इदिया) चञ्चल इन्द्रियाँ भी (तारिस) मेरुपर्वत के समान दृढ (त) उस पूर्वोक्त मुनि को (णो पइलति) सयम मार्ग से विचलित नहीं कर सकती ।१७।

इच्चेव सपस्सिय बुद्धिमं णरो,
आय उवायं विविह वियाणिया।
काएण वाया अदु माणसेणं,
तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिज्जासि ।१८। त्ति बेमि

अन्वयार्थ—(बुद्धिम) बुद्धिमान् (णरो) साधु (इच्चेव) उपरोक्त सभी बातो पर (सपस्सिय) भली प्रकार विचार कर के तथा (आय) ज्ञानादि लाभ के (उवाय) उपायो को (वियाणिया) जान कर (माणसेण) मन (वाया) वचन (अदु) और (काएण) काया रूप (तिगुत्तिगुत्तो) तीन गुप्तियो से गुप्त हो कर (जिणवयण) जिनेश्वर भगवतो के वचनो पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए सयम का (अहिट्ठिज्जासि) यथाव्रत् पालन करे। उपरोक्त अठारह स्थानो पर सम्यक् विचार करने से सयम से विचलित होता हुआ साधु का मन पुन सयम मे स्थिर हो जाता है ॥१८॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ प्रथम चूलिका समाप्त ॥

'विविक्त चर्या' नामक दूसरी

चूलियं तु पवक्खामि, सुयं केवलिभासिय ।
ज सुणित्तु सुपुण्णाण, धम्मे उप्पज्जए मई ॥१॥

अन्वयार्थ—(केवलिभासिय) जो सर्वज्ञ प्रभु द्वारा प्ररूपित है (सुय) श्रुतज्ञान रूप है और (ज) जिसे (सुणित्तु) सुन कर (सुपुण्णाण) पुण्यवान जीवो की (धम्मे) धम मे (मई) श्रद्धा (उप्पज्जए) उत्पन्न होती है, ऐसी (चूलिय) चूलिका का (पवक्खामि) मैं वर्णन करता हूँ ॥१॥

अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि, पडिसोय-लद्ध-लक्खेणं ।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउकामेणं ॥२॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार नदी मे गिरा हुआ काष्ठ, प्रवाह के वेग से समुद्र की ओर जाता है, उसी प्रकार (बहुजणम्मि) बहुत-से मनुष्य (अणुसोय पट्ठिए) विषय प्रवाह के वेग से ससार रूप समुद्र की ओर बहते है किन्तु (पडिसोय लद्ध लक्खेण) विषय प्रवाह से छूट कर (होउकामेण) मोक्ष जाने की इच्छा रखने वाले पुरुषो को चाहिए कि वे (अप्पा) अपनी आत्मा को (पडिसोयमेव) विषय-प्रवाह से सदैव (दायव्वो) दूर रखे ।

अणुसोयसुहो लोओ, पडिसोओ आसवो सुविहियाणं ।
अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥३॥

(ससारो) ससार (अणुसोओ) अनुस्रोत के समान [illegible] विषय-भोगो की ओर ले जाने वाला है (तस्स) उस ससार से (उत्तारो) पार होना (पडिसोओ) प्रतिस्रोत कहलाता है (सुविहिआण) साधु पुरुषो का (आसवो) सयम (पडिसोओ) प्रतिस्रोत अर्थात् विषयो से निवृत्ति रूप है। इसकी ओर प्रवृत्ति करना ससारी जीवो के लिए कठिन है, क्योकि (लोओ) ससारी जीव तो (अणुसोय सुहो) अनुस्रोत मे ही सुख मानते हैं ॥३॥

तम्हा आयारपरक्कमेणं,
संवर-समाहि-बहुलेणं ।
चरिया गुणा य णियमा य,
हुति साहूण दट्ठव्वा ॥४॥

अन्वयार्थ—(तम्हा) इसलिए (आयारपरक्कमेण) साधु को ज्ञानादि आचारो का पालन करने मे प्रयत्न करना चाहिए और उसके द्वारा (सवरसमाहि बहुलेण) सवर और समाधि की आराधना अधिक करनी चाहिए (य) और (साहूण) साधुओ की (चरिया) जो चर्या (गुणा) गुण (य) और (णियमा) नियम हैं उनका (दट्ठव्वा हुति) यथा समय पूर्णरूप से पालन करना चाहिए ॥४॥

अणिएयवासो समुयाणचरिया,
अण्णायउछं पइरिक्कया य ।

अप्पोवही कलहविवज्जणाय,
विहारचरिया इसिणं पसत्था ॥५॥

अन्वयार्थ—(अणिएयवासो) अनियतवास—किसी विशेष कारण के विना एक ही स्थान पर अधिक नही ठहरना (समुयाण चरिया) समुदानचर्या—गरीब और श्रीमत सभी के घरो से सामुदानिकी-भिक्षा ग्रहण करना एव अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेना (अण्णाय उछ) अज्ञात घरो से भिक्षा ग्रहण करना (पइरिक्कया) स्त्री-पशु-पडग आदि से रहित एकान्त स्थान मे रहना (य) और (अप्पोवही) उपधि अर्थात् भण्डोपकरण आदि थोडे रखना (य) तथा (कलह विवज्जणा) किसी के साथ कलह नही करना (विहारचरिया) यह विहारचर्या भगवतो ने (इसिण) मुनियो के लिए (पसत्था) प्रशस्त—कल्याणकारी बताई है ॥५॥

आइण्ण-ओमाण-विवज्जणा य,
ओसण्ण-दिट्ठाहड-भत्तपाणे ।
संसट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू,
तज्जायसंसट्ठ जई जइज्जा ॥६॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) गोचरी के लिए जाने वाले (जई) साधु को चाहिए कि (आइण्ण ओमाण विवज्जणा) जहाँ जीमनवार हो रहा हो और आने-जाने का मार्ग लोगो से खचाखच भरा हो ऐसे भीड-भडक्के वाले स्थान मे तथा जहाँ स्वपक्ष की ओर से अपमान होता हो, ऐसे स्थान मे गोचरी नही जावे ।

…भत्तपाणे) साधु को उपयोग पूर्वक शुद्ध भिक्षा ग्रहण केवल [illegible] चाहिए (य) और (तज्जायससट्ठ) दाता जो आहारादि दे रहा हो उसी से दाता के हाथ और चमचा आदि खरडे हुए हो तो (ससट्ठ कप्पेण) उन्ही खरडे हुए हाथ और चमचा आदि से आहार ग्रहण कर (चरिज्ज) सयम-यात्रा का तिर्वाह करते हुए विचरना चाहिए। (जइज्ज) उपरोक्त कल्याणकारी विहारचर्या भगवतो ने फरमाई है, इसलिए इसके पालन करने मे मुनियो को पूर्ण यत्न करना चाहिए ॥६॥

अमज्जमंसासि अमच्छरीया,
अभिक्खणं णिव्विगइं गया य ।
अभिक्खणं काउस्सग्गकारी,
सज्झायजोगे पयओ हविज्जा ॥७॥

अन्वयार्थ—(अमज्जमसासि) साधु को मद्य-मासादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कदापि नही करना चाहिए (अमच्छरीया) किसी से ईर्ष्या न करनी चाहिए (अभिक्खण) सदा (णिव्विगइ गया) विगयो का त्याग करना चाहिए (अभिक्खण) पुन पुन॰ (काउस्सग्गकारी) कायोत्सर्ग करना चाहिए (य) और (सज्झायजोगे) वाचना पृच्छनादि स्वाध्याय मे (पयओ हविज्जा) सदा लगे रहना चाहिए ॥७॥

ण पडिण्णविज्जा सयणासणाइं,
सिज्ज णिसिज्जं तह भत्तपाणं ।

गामे कुले वा णगरे व ...

ममत्तभावं ण कहिं पि कुज्जा ...

अन्वयार्थ—मासकल्पादि की समाप्ति पर जब साधु विहार करने लगे तब (सयणासणाइ) शयन-आसन (सिज्ज) शय्या (णिसिज्ज) निषद्या (तहा) तथा (भत्तपाण) आहार-पानी आदि किसी भी वस्तु के लिए श्रावको से (ण पडिण्णविज्जा) ऐसी प्रतिज्ञा नही करावे कि जब मै लौट कर आऊँ तब ये पदार्थ मुझे ही देना, और किसी को मत देना (गामे) गाँव मे (वा) अथवा (कुले) कुल मे (णगरे) नगर मे (व) अथवा (देसे) देश मे (कहिं पि) कही पर भी साधु को (ममत्तभाव) ममत्व भाव (ण कुज्जा) न रखना चाहिए, यहाँ तक कि वस्त्र-पात्रादि धर्मोपकरणो पर एव अपने शरीर पर भी ममत्व भाव नही रखना चाहिए ॥८॥

गिहिणो वेयावडियं ण कुज्जा,
अभिवायणं वदण पूयणं वा ।
असंकिलिट्ठेहिं सम वसिज्जा,
मुणी चरित्तस्स जओ ण हाणी ॥९॥

अन्वयार्थ—(मुणी) साधु (गिहिणो) गृहस्थ की (वेयावडिय) वैयावृत्य (वा) अथवा (अभिवायण वदण पूयण) अभिवादन—स्तुति, वन्दन—प्रणाम और पूजन—वस्त्रादि द्वारा सत्कार आदि कार्य नही करे तथा (असकिलिट्ठेहिं) संक्लेश रहित उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने वाले साधुओ के (सम)

की सूरत पर कुर्बान ताज बदनामी सह कर भी 'हिंदुआनी' होने के लिए तैयार हो गयी।[1]

कृष्ण-कवियो ने ... ो का निरूपण कर ... क-जीवन मे उल्ल...
सता का वाता... ा, किंतु ... समाज ... र
...र्म-सौदर्य के प्र... ा
करके ज्ञान वैरा... क
वर्णनो और रा... कृत
...दयो मे जाक... । और
...ज केवल ... दापुरुषोत्तम
...जक उत्कर्ष का
भक्ति और
किया । कहा
...किया ।

...शवैकालिक सू... २

रहे (जओ) जिनके साथ रहने से (चरित-...ण हाणी) विराधना न हो ॥९॥

ण वा लभेज्जा णिउणं सहायं,
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
इक्को वि पावाइं विवज्जयंतो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥

अन्वयार्थ—(या) कदाचित् कालदोष से (णिउण) सयम पालन करने मे निपुण (गुणाहिय) अपने से अधिक गुण-वान् (वा) अथवा (गुणओ सम वा) अपने समान गुणो वाला (सहाय) कोई साथी (ण लभेज्जा) न मिले तो (पावाइ) पाप-कर्मो को (विवज्जयतो) वर्जता हुआ (कामेसु) कामभोगों मे (असज्जमाणो) आसक्त नही होता हुआ, पूर्ण सावधानी के साथ (इक्को वि) अकेला विचरे, किन्तु शिथिलाचारी एव पासत्थो के साथ नही विचरे ॥१०॥

संवच्छरं वा वि परं पमाणं,
बीयं च वासं ण तहिं वसिज्जा ।
सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू,
सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ ॥११॥

अन्वयार्थ—(सवच्छर) वर्षा काल मे चार मास (च) और (वा वि) शेष समय मे एक मास रहने का (पर) उत्कृष्ट (पमाण) परिमाण है, इसलिए जहाँ पर चातुर्मास किया हो

अथवा मासकल्प किया हो (तहिं) वहाँ ... ना (वास) चतुर्मास अथवा मासकल्प (ण वसि...) ... चाहिए, क्योकि (सुत्तस्स अत्थो) सूत्र एव उस... (जह) जिस प्रकार (आणवेइ) आज्ञा दे, उसी प्रकार (सुत्तस्स) सूत्रोक्त (मग्गेण) मार्ग से (भिक्खू) मुनि को (चरेज्ज) प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

भावार्थ—वर्षा ऋतु मे जैन साधु को एक स्थान पर चार महीने और अन्य ऋतुओ मे अधिक से अधिक एक महीने तक ठहरने की आज्ञा है। जिस स्थान पर एक वार चतुर्मास किया हो, तो दो चतुर्मास दूसरी जगह करने के वाद ही फिर उस स्थान पर चतुर्मास कर सकता है। इसी प्रकार जहाँ मासकल्प किया हो, उसी जगह फिर मासकल्प करना दो महीने के वाद ही कल्पता है।

जो पुव्वरत्तावररत्तकाले,
सपेहए अप्पगमप्पएणं।
किं मे कड किं च मे किच्चसेसं,
किं सक्कणिज्जं ण समायरामि ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जो) साधु को (पुव्वरत्तावरत्तकाले) रात्रि के प्रथम पहर ओर पिछले पहर मे (अप्पग) अपनी आत्मा को (अप्पएण) अपनी आत्मा द्वारा (सपेहए) सम्यक् प्रकार से देखना चाहिए अर्थात् आत्म-चिन्तन करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) मैने (किं) क्या-क्या (किच्च)

की सूरत पर कुर्बान ताज बदनामी सह कर भी 'हिंदुआनी' होने के लिए तैयार हो गयी ।'

कृष्ण-कवियो ने ... का निरूपण कर ... जीवन मे उल्ल...
सता का वाता... , किंतु ... समाज...
...र्म-सौंदर्य के प्रा... कालिक सूत्र चूँ... २ ...
करके ज्ञान वैरा...
वर्णनो और रा...

...दयो मे जाक... (कड) किये हैं (च) और (किं) कौन कौन ... और से ... केवल ... कार्य करना (मे) मेरे लिए (सेस) अभी बाकी ...दापुरुषोत्तम है और (किं) वे कौन-कौन से कार्य है (सक्कणिज्ज) जिन...जक उत्कर्ष का करने की मुझ मे शक्ति तो है, किन्तु (ण समायरामि) प्रमादादि ...भक्ति और के कारण मैं उनका आचरण नही कर रहा हूँ ।।१२।। ...किया। कहा ...किया। ...न

> **किं मे परो पासइ किं च अप्पा,**
> **किं वाऽहं खलियं ण विवज्जयामि ।**
> **इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो,**
> **अणागयं णो पडिबंध कुज्जा ।।१३।।**

अन्वयार्थ—साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) जब मैं सयम सम्बन्धी कोई भूल कर बैठता हूँ तो (परो) दूसरे लोग—स्वपक्ष-परपक्ष वाले सभी लोग मुझे (किं) किस घृणा की दृष्टि से (पासइ) देखते है (च) और (अप्पा) मेरी खुद की आत्मा (किं) क्या कहती है (वा) और (अहं) मैं (किं) अपनी किन-किन (खलियं) भूलो को (ण विवज्जयामि) अभी तक नही छोड सका हूँ और क्यो नहीं छोड सका हूँ ? अब मुझे इन सब भूलो को छोड कर सयम मे सावधान रहना चाहिए (इच्चेव) जो साधु इस प्रकार (सम्मं) सम्यक (अणुपासमाणो) विचार एव चिन्तन करता है, वह (अणागयं) भविष्य मे (णो पडिबंध कुज्जा) दोषो से छुटकारा पा जाता है अर्थात् फिर वह किसी प्रकार का दोष नही लगा सकता ।१३।

जत्थेव पासे कइ दुप्पउ[illegible]
काएण वाया अदु माणसेणं [illegible]
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा,
आइण्णओ खिप्पमिवक्खलीणं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(इव) जिस प्रकार (आइण्णओ) जातिवान घोडा (वखलीण) लगाम का सकेत पाते ही विपरीत मार्ग को छोड कर सन्मार्ग पर चलने लग जाता है, उसी प्रकार (धीरो) बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि (जत्थेव) जब कभी (कइ) किसी भी स्थान पर (माणसेण वाया अदु काएण) अपने मन वचन और काया को (दुप्पउत्त) पाप-कार्य की ओर प्रवृत्त होते हुए (पासे) देखे तो (खिप्प) तत्काल (तत्थेव) उसी समय (पडिसाहरिज्जा) उनको उस पाप-कार्य से खीच कर सन्मार्ग मे लगा दे ॥१४॥

जस्सेरिसा जोग जिइदियस्स,
धिईमओ सप्पुरिसस्स णिच्चं ।
तमाहु लोए पडिवुद्धजीवी,
सो जीवई संजमजीविएण ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जिइदियस्स) जिसने चचल इन्द्रियो को जीत लिया है (धिईमओ) जिसके हृदय मे सयम के प्रति पूर्ण धैर्य है (जस्स) जिस (सप्पुरिसस्स) सत्पुरुष ने (जोग) मन वचन और काया रूप तीनो योगो को (एरिसा) अच्छी तरह वश मे कर लिया है (त) ऐसे महापुरुष को (लोए) लोक मे

की सूरत पर कुर्बान ताज बदनामी सह कर भी 'हिंदुआनी' होने के लिए तैयार हो

कृष्ण-कवियो ने ... का निरूपण करके लोक जीवन मे उल्लास और
ा का वातावरण ... किंतु उनकी ... समाज-कल्या
प्रेम-सौदर्य के प्रति त ... भगवा ... री रूप

...) प्रतिबुद्ध जीवी—संयम में सदैव जाग्रत रहने ... कहते हैं, क्योंकि (सो) वह (णिच्च) (संजम जीविएण) संयम जीवन से ही (जीवई) जीता है ।

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो,
सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ,
सुरक्खिओ सव्वदुहाण-मुच्चइ ॥१६॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ—(सव्विंदिएहिं) सभी इन्द्रियो को वश मे रखने वाले (सुसमाहिएहिं) सुसमाधिवत मुनियो को (सयय) सदैव (अप्पा) अपनी आत्मा की (खलु) सभी प्रकार से (रक्खियव्वो) रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उसे तप संयम मे लगा कर पाप-कार्यों से उसे बचाना चाहिए, क्योंकि (अरक्खिओ) जो आत्मा सुरक्षित नही है वह (जाइपह) जाति पथ को (उवेइ) प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फँस कर ससार मे परिभ्रमण करती रहती है और (सुरक्खिओ) सुरक्षित अर्थात् पाप-कार्यो से निवृत्त आत्मा (सव्वदुहाण) सभी दुखो का अन्त कर के (मुच्चइ) मोक्ष को प्राप्त हो जाती है ॥१६॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ दूसरी चूलिका समाप्त ॥

॥ दशवैकालिक सूत्र समाप्त ॥